सि

द्ध

यो

संस्थापक

योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

...ा सिद्धान्तों
...एवं शिक्षाओं
का
प्रतिपादक
मासिक

...र्ष : 37; अंक : 9
दिसम्बर 2004

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) दामलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- ध्यान की विधियाँ एवं उनकी अतुलित शक्तियाँ (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 10
- हिमालय के अमर महायोगी — पूर्णचन्द्र पन्त 13
- सिद्धयोग की साधना — डा० विजय सिंह 18
- बहुल क्रिया अभिगान — राजेश कुमार श्रीवास्तव 20
- रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी — कुण्डलिनी तथा आध्यात्मिक जागृति ... 21
- श्री प्रभु चरणों में समर्पित — राजेश कुमार सिंह 24
- सद्गुरु-महिमा — अनिल कुमार सिंह 25
- चित्त — जनक कुलश्रेष्ठ 30
- तप — रागेश्वर खण्डेलवाल 34
- चिन्मय शरीर से प्रभु जी द्वारा अमोघ वरदान — वेदव्रत द्विवेदी 37
- स्वास्थ्य चर्चा 39

एक प्रति	:	रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	:	रु. 100-00
द्विवार्षिक	:	रु. 190-00
आजीवन	:	रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 37 अंक 9	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्यानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	दिसम्बर 2004

अग्ने नय सुपथाराये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानिविद्वान्
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम्।

(यजु० अ० ४०/मंत्र १६)

अर्थात्

हे अग्ने ! स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत के प्रकाश करने वाले देव, सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिससे सम्पूर्ण विद्यायुक्त है, कृपा करके हम लोगों को विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये और हमसे कुटिलतायुक्त पाप रूप कर्म को दूर कीजिये, इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुति रूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।

अमृतकण

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र प्रजायन्ते दुर्भिक्ष मरणं भयम्।।

(स्कन्दपुराण, मा.के. ३/४८)

जहाँ अपूज्य व्यक्तियों का पूजन होता है और पूज्य व्यक्तियों का तिरस्कार होता है वहाँ तीन बातें अवश्य होती हैं—अकाल, मृत्यु और भय।

* * *

भ्रमन्संपूज्यते राजा भ्रमन्संपूज्यते द्विजः।
भ्रमन्संपूज्यते योगी भ्रमन्ती स्त्री विनश्यति।

(चाणक्य नीति ६/४)

भ्रमण करने से राजा पूजित होता है, भ्रमण करने से ब्राह्मण पूजित होता है, भ्रमण करने से योगी पूजित होता है, परन्तु स्त्री भ्रमण करने से विनष्ट हो जाती है अर्थात् उसका पतन हो जाता है।

* * *

असंतुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाश्च महीभुजः।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जश्च कुलांगना।।

(चाणक्य नीति ८/१८)

संतोष विहीन ब्राह्मण नष्ट हो जाता है, संतोषी राजा नष्ट हो जाता है, लज्जावती वैश्या नष्ट हो जाती है और लज्जा विहीन कुलवधू नष्ट हो जाती है।

* * *

सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्।।

(मनु० ६/४७)

पिता के धन का भाग एक बार मिलता है, कन्यादान एक ही बार किया जाता है, किसी वस्तु को देने की प्रतिज्ञा एक ही बार की जाती है, इस तरह सत्पुरुषों के ये तीनों कार्य एक ही बार हुआ करते हैं।

☐ विशेष लेख

ध्यान की विधियाँ एवं उनकी अतुलित शक्तियाँ

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

श्री प्रभु जी ध्यान की विधियाँ बताया करते थे। एक जगह पर एक अच्छे महात्मा अच्छी स्थिति के थे। उनसे मेरे सामने ही किसी व्यक्ति ने श्री प्रभु जी के विषय में पूछा—महात्मा जी ! प्रभु जी क्या हैं ? कैसे हैं ? इस पर उन्होंने कहा—श्री प्रभु जी परम योगेश्वर सर्वशक्तिमान हैं। उनकी ताकत का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता—कोई अन्त ही नहीं। किन्तु फिर एक बात और कही—उनकी भावना से किसी और को, किसी और आकृति को भी देखोगे तो वह आकृति भी तुम्हारे लिये सिद्ध हो जायेगी—तुम जिसका ध्यान करोगे वह भी सिद्ध हो जायेगा।

उस समय मुझे भगवान के ये शब्द याद आये **श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः** अर्थात् जिस की जैसी श्रद्धा होती है परमात्मा वैसे ही बन जाते हैं। हम भगवान राम की, भगवान कृष्ण की, भगवान शिव की तस्वीरें देखते हैं वह मन की कल्पना ही है। हमने भगवान राम को नहीं देखा, भगवान कृष्ण को नहीं देखा। पुस्तकों से पढ़कर अथवा किसी से सुनकर के, तस्वीर बनाने वाले के मन जो तस्वीरें बनती हैं वैसे ही तस्वीर बना लेता है। तुमने बाजार में जाकर देखा होगा कि भगवान कृष्ण की कई तस्वीरें होती हैं। लेकिन वे तस्वीरें एक दूसरे से मिलती नहीं हैं। तस्वीर भिन्न–भिन्न होती है। बनाने वाले के दिमाग में जैसे–जैसे भाव होते हैं उसी कल्पना से चित्र बना लिया करता है। योग दर्शन में समाधि की प्राप्ति के बहुत से उपाय हैं उनमें एक उपाय है **'वीतराग विषयम् या चित्तम्'** अर्थात वीतरागी पुरुषों के ध्यान से भी समाधि होती है। वीतराग पुरुष का जब हम चिन्तन करते हैं तो वह ही हमारे लिये परमेश्वर बन जायेगा। जब हम चिन्तन आरम्भ करते हैं तो वह हमारी कल्पना ही होती है। किन्तु ध्यान करने वाला जब उस आकृति का ध्यान करेगा तो उसकी अपनी मानसिक शक्ति से ध्यान की शक्ति से उस तस्वीर में प्राण स्पन्दन होने लगेगा, तस्वीर बोलने लगेगी—आशीर्वाद देगी। यह बातें तस्वीर से होने लगेंगी।

हमें बहुत से ऐसे व्यक्ति मिलते हैं जो श्रद्धापूर्वक भगवान की मूर्तियों का ध्यान किया करते हैं। श्री प्रभु जी बताया करते थे—इन मन्दिरों का निर्माण क्यों हुआ ? यह केवल आरती पूजा के लिये ही नहीं है—मूर्तियों से मनुष्य के मन में श्रद्धा अंकुरित हो जाती है। वही चित्र देखते–देखते हमारे चित्त में अंकित हो जाता है और जब हम उनका ध्यान करते हैं तो वही

चित्र ध्यान में आने लगेगा। ध्यान में जो आकृति बन जायेगी उसके अन्दर अपने आप प्राण समाविष्ट हो जाया करता है। और वह आकृति बोला करती है आशीर्वाद देती है आदि–आदि कार्य होने लगते हैं। संसार में सभी शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं। वह शक्ति जो शक्तिशाली है, उनसे मिला करती है। योगी लोग दूसरे की शक्ति को प्राप्त करने के लिये क्या करते हैं ? इसके कई उपाय हैं। पहला उपाय है यदि कोई योगी हमसे शक्तिशाली है तो उससे शक्ति प्राप्त करने का उपाय तो यह है **'तद्विद प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया'** उन्हें नमस्कार करो, उनकी सेवा करो तब वह प्रसन्न होकर अपने ज्ञान का उपदेश करेगा। जब तक वह प्रसन्न नहीं होगा अपने भीतरी अनुभव व ज्ञान को नहीं बतायेगा–यह शक्ति प्राप्ति का एक उपाय हुआ।

दूसरा उपाय है जो ध्यान से सम्बन्ध रखने वाला है। हम चाहते हैं अमुक व्यक्ति क्या मन्त्र जप रहा है तथा उसके मन में क्या–क्या विचार आ रहे हैं यह जानें तो इसका उपाय यह है कि यदि हमारे मन की ताकत बढ़ी हुई है धारण ध्यान का अभ्यास करते–करते मानसिक स्थिति जिसकी इतनी उत्कृष्ट हो गई हो कि वह अपनी ताकत से दूसरे को आकर्षित कर सके अपने पास बुला सके। जैसे लोक में एक प्रभावशाली व्यक्ति किसी को बुलाता है इधर आओ ! तो वह तुरन्त आ जाता है। पता नहीं गुरुजी मुझे क्यों बुला रहे हैं यह सोचकर दौड़ा हुआ आता है–या मालिक अपने किसी नौकर को बुलाता है तो वह आवाज सुनते ही तुरन्त भागा चला आता है इसी प्रकार से योगी की अपनी ताकत होती है। योगी जिस जीव को बुलाना चाहता है ध्यान में बैठकर जिसके लिये संकल्प करता है वह आकृति (व्यक्ति) जहाँ भी हो चटपट उसी समय सामने आ जायेगा। ताकत वाला उसके सूक्ष्म शरीर को खींच लेगा। वह चला आयेगा। उसके सूक्ष्म शरीर से जो भी पूछना चाहेगा सूक्ष्म शरीर सब कुछ सत्य–सत्य बता देगा। सूक्ष्म शरीर की भी आकृति वैसी ही होती है जैसे स्थूल शरीर की। सूक्ष्म शरीर का पुतला सामने आयेगा और योगी के प्रभाव से सब कुछ बता देगा।

तीसरा उपाय एक और है वह है **'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय वा'**। यदि कोई योगी किसी के मन की स्थिति जानना चाहता है तो उसे योग ध्यान की विधि से जान पायेगा। ध्यान की स्थिति में ध्याता, ध्यान और ध्येय तीन वस्तुयें रहा करती हैं। ध्यान करते–करते ध्येय ही सामने रहता है। वही–वही दिखलाई देता है। यह पातंजल ध्यान पद्धति है। एक और भी ध्यान की पद्धति है वह है **'ध्यानं निर्विषयं मनः'** अथवा **'न किञ्चिदपि चिन्तयेत्'**। मनुष्य ध्यान में बैठ जाये और किसी भी वस्तु का चिन्तन न करे। मन को विचारों से शून्य कर दे इसमें भी वृत्ति निरोध हो जाती है। मैंने तुम्हें बताया था कि योग दो प्रकार से प्राप्त होता है। सिद्धों की कृपापूर्वक शक्तिपात द्वारा तथा साधन योग से। ध्यान धारणा का अभ्यास प्राणायाम, बन्ध–मुद्राओं का अभ्यास साधन योग है। मनुष्य, अपनी योग स्थिति बनाने के लिये जो भी प्रयत्न करता है वह सब साधन योग है। समाधि प्राप्ति के लिए वीतराग पुरुषों का ध्यान करते हैं।

किन्तु ध्यान इसलिये नहीं करते हैं कि उनसे कुछ प्राप्त कर लें। योगी उनके स्वरूप को ध्येय बनाकर उनका चिंतन किया करते हैं। उसमें ही समाधि हो जाया करती है ध्यान करने से ही उन वीतरागियों को ज्ञान हो जाता है। हमारे मन में धारणा बनी ! हे शिव ! हे विश्वनाथ ! तो यहाँ संस्कार बने इधर उनको ज्ञान हो गया। अमुक व्यक्ति मुझे याद कर रहा है। चिन्तन मात्र से महापुरुष–सिद्ध पुरुष ध्यान करने वाले को जान लेते हैं। क्योंकि उनका अन्तःकरण शुद्ध होता है। उनका जो जैसा चिन्तन करता है उसी रूप में उनके सामने आ जाता है। यदि कोई प्यार करता है तो प्यार करता हुआ उसका सूक्ष्म शरीर सामने आ जायेगा। यदि कोई क्रोध करता है, सूक्ष्म शरीर क्रोध करता हुआ सामने आ जायेगा। चिन्तन से ही वे जान लिया करते हैं क्योंकि वे सर्वसमर्थ है। किन्तु उनके अतिरिक्त भी एक योगी जो नियम से ध्यानाभ्यास करते हैं वह भी अपने संस्कारियों को जान लेते हैं। उनको भी ज्ञान हो जाता है कि अमुक व्यक्ति मुझे याद कर रहा है। अमुक भक्त को दुःख हो रहा है आदि–आदि बातें तत्काल ज्ञात हो जाती हैं।

द्रोपदी ने कौरवों की भरी सभा में संकट के समय भगवान को याद किया। सबसे पहले द्रोपदी ने भगवान के लिये एक बात कही–

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् कृष्ण गोपीजन प्रियः।
कौरवार्णव निमग्नां मां किं न पश्यसि केशव।।

हे महायोगी मुझे आप क्यों नहीं देख रहे हैं ? उसके कहने का अभिप्राय यह है कि आप तो महायोगी हैं। एक साधारण योगी भी जिसका अच्छा ध्यान लगता है, इस बात को जान लेता है कि मेरे अमुक भक्त को कष्ट है, अमुक मित्र को संकट है। आप तो महायोगी हैं आप मुझे क्यों नहीं देख रहे हैं ? मैंने दो दिन पूर्व प्रातिभ ज्ञान का वर्णन किया था। इसके उदय होने पर योगी के मन में सत्याभास होता है। जो कुछ जैसा हो रहा है वैसा ही उनके मन में भावना बनती है। वह देखता नहीं है। देखना तो उसके संकल्प पर होगा बाद में। यदि उसके मन में भावना आ रही है, अमुक स्थान पर वर्षा हो रही है तो उस स्थान पर वर्षा हो ही रही होगी, इसमें शंका की कोई बात नहीं होगी। मैंने तुम्हें कई बार पहले भी रामस्वरूप सफीदों वाले की घटना सुनाई थी। हमारे एक महात्मा ने उनसे कह दिया कि आप जल्दी–जल्दी दीक्षा ले लो। उसने जल्दी दीक्षा ले ली। बाद में उससे पूछा–आपने जल्दी दीक्षा लेने के लिये क्यों कहा ? उन्होंने कहा– तुम्हारी पत्नी को प्रसव हो गया है, उन्होंने लड़के को जन्म दिया है। सूतक से पहले ही दीक्षा लेनी चाहिये इसलिये मैंने जल्दी करने के लिये कहा था। बात ज्यों की त्यों थी। गुफा पर बहुत से आदमी मौजूद थे। उन्होंने पूछा–महाराज आप को कैसे पता लगा कि इसकी स्त्री को प्रसव हो रहा है। क्या आपने प्रसव होते हुये देखा ? या आपको कोई स्वप्न हुआ। आपको कैसे पता लगा ? तो उसने बिल्कुल सत्य बताया–मैंने देखा नहीं, नजर मेरी नहीं गई, किन्तु

मेरे मन में भाव आया, बच्चा पैदा हो रहा है—ऐसा संकल्प मेरे मन में आया। ऐसे संकल्प जब मेरे मन में आते हैं, सब सत्य होते हैं, इसलिये मैंने अपने संकल्प के आधार पर कह दिया कि जल्दी दीक्षा ले लो। और संकल्प आने के बाद जब योगी देखना चाहे तो उसके संकल्प से तत्काल दृष्टि भी वहाँ पहुँच जाती है। और उसे सब कुछ दीख जाता है।

बनारस में हमारा एक महात्मा सच्चिदानन्द रहता है। श्री प्रभु जी के चरण कमलों में आया था। श्री प्रभु जी ने उसे रसोई के काम के लिये चार–पाँच रुपये मासिक वेतन पर रख लिया था। मैं भी उन दिनों श्री प्रभु के चरणों में ऋषिकेश रहा करता था। थोड़े दिनों में उसे विरक्ति हो गई और उसने स्वर्गाश्रम में जाकर संन्यास ग्रहण कर लिया। संन्यास तो ले लिया, किन्तु श्री प्रभु जी की कृपा पूर्वक उसका ध्यान अपने आप चलता था। हमारे भाई बहिनों के ध्यान में बैठने से भी उसकी स्थिति बढ़ी। संन्यास लेने पर भी बाद में श्री प्रभु जी से योग दीक्षा ले ली। वह वृद्ध हो गया है कानों से भी कम सुनाई देता है। हमारा एक बच्चा विष्णु है वह उनके पास जाया करता है—वह विष्णु से कहता था—देखो विष्णु ! इस दीवार के अन्दर सिद्ध लोग आ रहे हैं श्री प्रभु जी आ रहे हैं। मैं इस दीवार से आगे के दृश्य देख रहा हूँ। यह सब उसके आत्म ध्यान की बातें हैं। मैं तुम्हें जिस बात को समझाना चाहता हूँ वह यह है कि जब योगी को प्रातिभ ज्ञान हो जाता है तो वह सत्य संकल्प वाला हो जाता है। उसके मन में संकल्प आ रहा है, अमुक स्थान पर वर्षा हो रही है, अमुक स्थान पर अग्निकाण्ड हो रहा है, तो ये बातें वस्तुतः हो रही होंगी तभी उसके मन में संकल्प आया। प्रातिभ के अनुसार वह हजारों कोस दूर की वस्तु को भी छू लेता है। यदि देखना चाहता है तो कोसों दूर की देख लेता है। यदि हजारों कोस दूर की बात सुनना चाहता है तो सुन लेता है। यह सब बातें उसमें स्वाभाविक आ जाती हैं। मुझे आनन्दकन्द प्रभुजी की एक घटना याद आई। एक बार श्री प्रभुजी अमृतसर में विराजमान थे और कुछ दिन के लिये उन्होंने ऐसा कर दिया था कि अपने कमरे बन्द रखते थे किसी से मिलते–जुलते नहीं थे। खास आवश्यक हुआ तो ही मिलते थे, अन्यथा नहीं मिलते थे। उस समय वहाँ पर लोग दर्शन करने आते थे, दर्शन करके तुरन्त लौट जाया करते थे।

श्री प्रभु जी के लीलावसान के बाद अमृतसर का एक ब्राह्मण जगन्नाथ वैष्णव देवी के दर्शन करने जा रहा था। जाते–जाते वह पहाड़ पर किसी गड्ढे में गिर गया उसने किसी योगी के बारे में सुन रखा था कि वहाँ आसपास में बहुत बड़े योगी रहते हैं। जगन्नाथ की प्रभु जी में श्रद्धा नहीं थी। वे उन्हें ढोंगी ही मानता था। कहता था जैसे ब्राह्मण ये वैसे हम हममें उनमें क्या फर्क है ? किन्तु जिस समय वह उस गड्ढे में गिर गया तो उसके मन में धारणा आई कि यदि प्रभु जी शक्तिमान हैं तो ऐसी कृपा करें कि योगी के दर्शन हो जायें। उसके मन में ऐसे विचार आते ही योगी सामने आ गये। क्यों ? क्यों खड़ा है यहाँ पर ? वह कहने लगा—महाराज ! मैं आपके दर्शन करने आया हूँ। योगी कहने लगे—तू मूर्ख है ! सूरज को छोड़कर दीपक के पास

आया है ? वह ब्राह्मण कहने लगा— महाराज ! कौन सूरज और कौन दीपक, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। महाराज ने कहा—सूरज तो वे जिनसे तू हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा था कि ऐसी कृपा करें मुझे योगी के दर्शन हो जाये— मैं दीपक हूँ उनका ही बच्चा हूँ। इसके बाद वे महात्मा उस ब्राह्मण को अपनी गुफा में ले गये—जगन्नाथ ने देखा—गुफा में बड़ा प्रकाश हो रहा है वहाँ श्री प्रभु जी का बड़ा चित्र है। चित्र पूजित है आरती की ज्योति जल रही है। गुफा में बहुत भारी प्रकाश को देखकर ब्राह्मण कहने लगा—महाराज ! यहाँ यह इतना प्रकाश कहाँ से आ रहा है ? महात्मा ने कहा—यह उन्हीं की कृपा की लाईट है। ब्राह्मण ने पूछा—महाराज—उनका यह चित्र आपके पास यहाँ पहाड़ में कैसे आया ? महात्मा ने एक घटना बतलाई। वह कहने लगा—देखो, एक बार श्री प्रभु जी ने एकान्तवास शुरू कर दिया था, उनकी दाढ़ी काफी बढ़ गई थी उनका विचार था कि वह नैपाल को चले जायें, उस समय बहुत से योगी उनसे प्रार्थना करने के लिये जाते थे कि प्रभु जी अभी आप नैपाल को न जायें। अभी आपने अपने बच्चों का उद्धार करना है। योगियों में मैं भी था। मैं उनके पास उस कोठी में मिलने गया था। पं० जगन्नाथ ने पूछा—महाराज ! आप कौन सी कोठी में गये थे—महात्मा जी ने कहा—रेलवे स्टेशन के पास एक बड़ी सी कोठी में प्रभु जी एकान्तवास कर रहे थे। वहाँ हम लोग गये थे। वह कोठी ला० चुन्नी लाल की कोठी थी। यह चित्र मैंने वहाँ कोठी में देखा था—उस समय मैंने उनसे कुछ नहीं कहा—ऐसी भावना को लेकर मैं वापिस आ गया, यहाँ गुफा में आने पर भी मेरी यह भावना बनी ही रही कि चित्र हमें मिल जाता तो अच्छा था। एक दिन प्रभु जी ने वहीं से ही उठाकर यह चित्र हमें दे दिया था। यह श्री प्रभु जी का दिया हुआ चित्र है इसका हम पूजन करते हैं। इन्हीं का प्रकाश इस गुफा में है।

मेरे कहने का अभिप्राय यह—**'ततः प्रातिभश्रावण वेदनादर्शास्वाद वार्त्ता जायन्ते'** यह योग दर्शन का सूत्र है। इसका अर्थ यह है कि योगी को पहले प्रातिभ ज्ञान होता है। प्रातिभ ज्ञान होने पर योगी को सत्यानुभूति होती है। मन के अन्दर कोई कुसंकल्प आता ही नहीं। जो वर्तमान में होने वाला है वही संकल्प आता है। प्रातिभ ज्ञान के बाद यदि योगी उस घटना को देखना चाहे तो देख भी लेता है। उपनिषदों में जहाँ हम ब्रह्मलोक का वर्णन पढ़ते हैं वहाँ पर इस प्रकार की बातें आती हैं जैसे कल परसों मैं अपने व्याख्यान में देवलोक में रहने वाले की शक्ति का वर्णन कर रहा था— उनमें शक्ति विशेष हुआ करती है। जैसे हमारे मनुष्य लोक में पक्षियों को स्वभाव से ही आकाश गमन होता है किन्तु मनुष्य नहीं उड़ सकता। क्योंकि मनुष्य के अन्दर यह ताकत है नहीं। मनुष्य यदि आकाश में उड़ना चाहेगा तो उसके लिये आवश्यक है समाधि लगाये, संयम करे। उसके बाद आकाश में उड़ने की ताकत आ जायेगी। **''कायाकाशयोः सम्बन्ध संयमात्लघुतूल समापत्तेश्चाकाश गमनम्''**-शरीर और आकाश के सम्बन्ध में जब योगी संयम करता है तो शरीर रूई के मानिन्द हल्का हो जाता है और धीरे-धीरे आकाश में उड़ने

लगता है। किन्तु पक्षियों को यह शक्ति स्वभाव से प्राप्त है। इसी प्रकार से देवलोक के जो देवता हैं उनके अन्दर आकाश गमन करना, दूर का देखना, दूर का सुनना वरदान व अभिशाप देना आदि ताकतें स्वभाविक हुआ करतीं हैं और वहाँ बुढ़ापा और मौत वगैरह नहीं आती। उन्हें बुढ़ापा नहीं आता और प्राण हमारी तरह नहीं छोड़ते। उनके शरीर पुण्य क्षीण होने के साथ–साथ अपने आप घटते रहते हैं। एकदम दिव्य आत्म तेज के द्वारा दूसरी जगह जन्म ले लेते हैं।

मैं अभी तुम्हें इन देवलोक से आगे ब्रह्मलोक के देवताओं के बारे में बता रहा था। वहाँ के आत्माओं में योगियों वाली विशेष शक्ति स्वाभाविक होती है। वहाँ के देवता ब्रह्माण्ड में कहीं की भी बात सुनना चाहें तो 'श्रृणवन श्रोतम् भवति' इच्छा मात्र से उनके काम हो जाते हैं। मनुष्य लोक में हमें एक दूसरे की बात को सुनने के लिये कान लगाना पड़ता है। इस प्रकार से थोड़ी दूर की आवाज को ही हम सुन पाते हैं। ब्रह्मलोक के देवताओं के मन में आया हम सुन लें तो **'श्रृणवन् श्रोतम् भवति।'** यदि ब्रह्मलोक के किसी आत्मा को ख्याल आया कि मैं मनुष्य लोक के अपने अमुक व्यक्ति की बात सुनूँ तो सुनने की भावना मात्र से कहीं भी कोई भी शब्द हो सुन लेता है वे तैजस जीव होते हैं तेज मे विलीन रहा करते हैं। सुनना चाहते हैं तो सुन लेते हैं। **'पश्यन् चक्षुः भवति'**–देखना चाहें तो आँखें हैं। हम लोगों को आँखों से एक तरफ की दिखाई देती है जिधर आँखें हैं, पीछे की वस्तु को देखना हो तो पीछे मुड़ने पर ही दिखाई देगी। वह भी एक सीमित दूरी तक। हमारी नेत्र की शक्ति आँखों के गोलक के दायरे में है। किन्तु ब्रह्मलोक के वासियों को ऐसा नहीं करना पडता। वहाँ गोलकों की आवश्यकता नहीं पडती, सुनना चाहते हैं, कान हो जाते हैं **'स्पर्शन् त्वग् भवति'** किसी को छूना चाहें तो छू लेते हैं। उनमें विकरण भाव होता है। बिना इन्द्रियों के सब काम कर लेते हैं। वे प्रकृतिलीन से ऊपर हैं व एक दिव्य तेज में फिरा करते हैं। दिव्य तेज में ही सुनने, देखने, छूने आदि की इच्छा होते ही सब कार्य हो जाते हैं। योगियों के अन्दर यह शक्ति योग ध्यान के द्वारा स्वतः प्राप्त हुआ करती है।

मुझे एक घटना और याद आई जो इस सिद्धान्त को और स्पष्ट करने वाली है। श्री प्रभु जी ऋषिकेश आश्रम में विराजमान रहा करते थे। उनके चरण कमलों में एक महात्मा आया उसने उनसे योग दीक्षा ग्रहण की। कैसे ग्रहण की, यह बात मैं तुम्हें बताऊँ। श्री प्रभु जी शाम को गंगा किनारे घूमने जाया करते थे। मैं भी उनके साथ होता था। वहाँ गंगा किनारे पत्थर पर एक महात्मा बैठा रहता था। माला तुलसी की रखता था और भजन में बैठा रहा करता था। श्री प्रभु जी ने उस महात्मा को गौर से देखा और आगे चल पड़े। जो साथ में समझदार थे वे कहने लगे कि हाँ प्रभु जी ने इस पर तो कुछ कृपा कर दी। दूसरे दिन फिर प्रभु जी वहाँ गये। उस दिन वह महात्मा बिलकुल निस्तब्ध दीक्षा प्राप्त करने के बाद उसका योग ध्यान चलने लगा।

उसने श्री प्रभु जी से एक सवाल किया कि प्रभु जी ऐसी कृपायें आप उन्हीं पर करते हैं जो आप से दीक्षा लेते हैं या और भी लोगों पर दूसरी जगह भी करते हैं। श्री प्रभुजी हँस पड़े कहने लगे—वे सर्वशक्तिमान प्रभु सब पर सभी जगह कृपा करते हैं। वह कहने लगा—मैंने आप की कृपा अनुभव तो गंगा किनारे कर लिया था किन्तु दीक्षा के बाद ध्यान की स्थिति ऊँची हो गई है। तो प्रभु जी आप यह बतायें दूसरी जगह आप कैसे करते हैं ? वह श्री कृष्ण में प्रेम रखता था। श्री प्रभु जी कहने लगे—जा, मथुरा वृन्दावन चला जा वहाँ पर अपने इष्ट देव का ध्यान करते रहना, वहीं तुम्हें इस बात का जबाव अपने आप मिल जायेगा। बेकार क्यों मेरा कान खाया करता है। श्री प्रभु जी की आज्ञा पाकर वह वृन्दावन चला गया। वहाँ जाकर गाजीपुर में बरसाना नन्द गाँव के बीच में प्रेम सरोवर में रहा। वहाँ पास में राधा गोविन्द जी का मन्दिर है, वहाँ जाकर के वह महात्मा रहा। आजकल तो प्रेम सरोवर में बहुत परिवर्तन हो गया। उस प्रेम सरोवर में वह महात्मा रात को घूमा करता था। और प्रभु जी की कृपाओं का अनुभव किया करता था। वहीं पर श्री प्रभु जी ने उसे अनुभव करा दिया कि श्री प्रभु जी कहीं पर भी किसी पर भी कृपा कर सकते हैं, इसलिये सर्वशक्तिमान गुरुदेव श्री प्रभु जी के अभय चरणों को पाकर अपने को ध्यानी—योगी बना लो, तभी देह धरे का फल मिलेगा। बार—बार आशीर्वाद।

❊ ❊ ❊

क्रिया और पदार्थ से ऊँचा उठने पर ही तत्व की प्राप्ति होगी। क्रिया और पदार्थ का उपयोग केवल दूसरों के लिए किया जाय, निष्काम भाव से किया जाये तो हम क्रिया और पदार्थ से ऊँचा उठ जायेंगे। यह कर्मयोग है। क्रिया और पदार्थ हमारे थे नहीं, हैं नहीं, होंगे नहीं, हो सकते नहीं। ये संसार के हैं। इनको अपना मानना बेईमानी है।

इसी जन्म में फल देने वाले पुण्य एवं पाप कर्म

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

'कुशलाकुशलानि कर्माणि' अच्छे या बुरे भाव से युक्त होकर जो क्रिया की जाती है उसे कर्म कहते हैं। मनुष्य हर क्षण कुछ न कुछ करता रहता है। अच्छे कर्म का फल सुख तथा बुरे कर्म का फल दुःख के रूप में मिलता है। कर्म के फल को योग की भाषा में 'विपाक' कहते हैं। **'गहना कर्मणो गतिः'** कर्म की गति बड़ी ही गहन होती है। कर्म रहस्य एवं कर्म मीमांसा को समझना बहुत कठिन है। क्लेश अर्थात् अविद्या के रहते ही कर्म बनते हैं। राग एवं द्वेष जनित कर्म होते हैं। अच्छे कर्म को शुक्ल कर्म तथा बुरे कर्म को कृष्ण कर्म कहते हैं। शुक्ल कर्म से पुण्य बनता है और कृष्ण कर्म से पाप। विवेक ख्याति प्राप्त योगी का कर्म पुण्य पाप से रहित होता है। योग दर्शन का सूत्र है—**'अशुक्लाकृष्ण योगिनाम् त्रिविधमि तरेषाम्'**। अर्थात् योगी के कर्म न तो शुक्ल होते हैं और न ही कृष्ण। किन्तु योगियों को छोड़कर सांसारिक व्यक्तियों के तीन प्रकार के कर्म होते हैं। पुण्य के कर्म, पाप के कर्म तथा पापपुण्य मिश्रित कर्म। श्री मद्भगवद् गीता में भी भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी ने इष्ट, अनिष्ट तथा मिश्रित कर्म अयोगियों के बताये हैं किन्तु योगियों के कोई कर्म नहीं होते हैं।

सारे कर्म तीन गुणों के अन्तर्गत बनते हैं। सतोगुण की अधिकता से पुण्य कर्म बनते हैं। इसमें रजोगुण सहायक रहता है। सतोगुण जन्य पुण्य कर्म भी जीव को बन्धन में डालते हैं। चित्त में तमोगुण की अधिकता रहने पर पाप के कर्म बनते हैं। योगी ध्यानयोग के बल से कर्मफल को त्याग देता है किन्तु अयोगी के लिये कर्मबन्धन में डालने वाले होते हैं। भगवान् कृष्ण चन्द्र की वाणी है—

'युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्' योगी कर्मफल को त्यागकर अखण्ड शान्ति को प्राप्त करता है। ध्यान योग जन्य योगाग्नि के बल से योगी के सारे कर्म संस्कार एवं कर्मफल जल जाते हैं।

'ज्ञाग्निसर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा'।

जिस प्रकार अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है उसी प्रकार से ज्ञानाग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है। इसीलिये कहा गया है ज्ञान के सदृश पवित्र करने वाली कोई वस्तु नहीं है। यह ज्ञान ध्यान योग से ही प्रकट होता है।

मनुष्य अपनी मनोवृत्ति के अनुसार हर क्षण कर्म में प्रवृत्त रहता है। इस प्रकार से हर अच्छे कर्म के साथ बुरा कर्म भी लगा रहता है। अच्छे कर्म को अक्लिष्ट कर्म भी कहते हैं। अक्लिष्ट कर्म के साथ क्लिष्ट कर्म भी युक्त रहा करता है। प्रत्येक कर्म का फल भी मिलना है कौन से कर्म का फल कब मिलना है यह कहना बहुत कठिन है।

योग दर्शन में एक सूत्र है—**'क्लेश मूलः कर्माशय दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीयः'** अर्थात् कर्माशय अविद्या मूलक होता है। तथा दृष्टजन्म वेदनीय एवं अदृष्ट जन्म वेदनीय होता है। अर्थात् कुछ कर्म ऐसे होते हैं जिनका फल इसी जन्म में मिलता है उसे ही **'दृष्टजन्म वेदनीय'** कर्म कहते हैं और कुछ कर्म ऐसे होते हैं जिनका फल इस जन्म में नहीं मिल पाता उसे ही अदृष्टजन्म वेदनीय कर्म कहते हैं। कौन से ऐसे पुण्य कर्म हैं जिनका फल इसी जन्म में मिलता है। इसी प्रकार से कौन से ऐसे पाप कर्म हैं जिनका फल इसी जन्म में मिलता है ? इस प्रश्न का उत्तर व्यासदेव जी ने इसी योग सूत्र के व्यास भाष्य में दिया है—**'स तु तीव्र संवेगेन मन्त्र तप समाधिभिरनिवर्तत, महर्षि महानुभावानाम्, ईश्वराराधनाद्वा सद्यः परिपच्यते पुण्य कर्माशय इति'** अर्थात् तीव्र संवेग से—दृढतर अभ्यास से, किया गया मन्त्र जाप, तपानुष्ठान एवं समाधि जन्य प्रबल पुण्य कर्मों का, महर्षि महानुभावों की—सिद्ध गुरुदेव की आराधना व ईश्वर की आराधना का फल उसी जन्म में मिल जाता है ये ही **'दृष्ट वेदनीय'** पुण्य कर्म हैं जिनका फल सद्यः मिल जाता है।

हमारे धर्मग्रन्थों एवं पुराणों में इस प्रकार के बहुत से उदाहरण हैं जिनके द्वारा यह ज्ञात होता है कि तीव्र संवेग से किया गया मन्त्र जाप, तप एवं समाधि के अभ्यास का फल उसी जन्म में मिला है। ध्रुव की तपस्या एवं समाधि के दृढ़ अभ्यास का परिणाम उन्हें उसी जन्म में मिला। छः माह में ही भगवान् की प्राप्ति हो गयी है अभीष्ट सिद्धि मिल गई।

इसी प्रकार से मृकण्ड ऋषि के पुत्र को देवाराधना एवं महर्षिकृपा का फल इसी जन्म में मिल गया परिणाम स्वरूप वे अजर अमर होकर मार्कण्ड ऋषि के रूप में अमर महापुरुष हैं। ऐसे ही प्रह्लाद मीरा बाई तुलसीदास तथा अनेक योगी महापुरुषों को भक्ति एवं समाधि का फल इसी जन्म में मिला है। ध्यान योग सद्यः फलदायी हुआ करता है। इसीलिये श्रुतियों में इसकी महिमा गाई गई है।

कुछ ऐसे दृष्टजन्मवेदनीय पाप कर्म होते हैं जिनका फल इसी जन्म में मिलता है। विश्वास में आये हुये प्राणी के साथ विश्वास घात करने का फल इसी जन्म में मिलता है। तपस्वी, योगी महापुरुषों के साथ बार–बार किये गये अपकार का भी इसी जन्म में फल मिल जाता है। इसी प्रकार से निर्बल प्राणी को घोर यातना देने का फल इसी जन्म में मिलता है। गुरुदेव की अवज्ञा, व निन्दा का भी फल सद्यः मिलता है। शास्त्रों में जो घोर निन्दित कर्म हैं उनका भी फल इसी जन्म में मिलता है।

ध्यान योगी महापुरुष के प्रति किया गया घोर अपराध का परिणाम शाप के रूप में मिल जाता है। अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न योगी का शाप तत्काल फल दे डालता है। धर्म शास्त्र एवं पुराणों में ऋषियों के कोप के फल के उदाहरण भरे पड़े हैं।

कर्माशय के अनुसार ही जीव की जाति (मनुष्यादि) आयु तथा योग का निश्चय होता है। चित्त में जन्मजन्मान्तर के संस्कार संचित होते चले आते हैं जब कर्माशय के जो संस्कार चित्त में प्रबल रूप से उत्पन्न होते हैं प्रबल या प्रधान संस्कार कहलाते हैं जो शिथिल रूप से पड़े रहते हैं उन्हें उपसर्जन संस्कार कहते हैं। जीव की मृत्यु के समय कर्माशय के प्रधान संस्कार पूरे वेग से जाग उठते हैं और अपने जैसे पूर्व जन्मों के संस्कारों को एकत्रित कर जगा देते हैं उसी के अनुसार अगले जन्म की जाति, आयु और भोग रूप प्रारब्ध तैयार हो जाता है।

दृष्टजन्म वेदनीय कर्म को नियत विपाक कर्म कहते हैं। अदृष्टजन्म वेदनीय कर्म को अनियत विपाक वाले कर्म कहते हैं। क्योंकि अभी इनका फल नियत नहीं हुआ होता है। समाधि के फलस्वरूप विवेकख्याति की प्राप्ति हो जाने पर सब कर्म फल क्षीण हो जाते हैं। हृदय की सारी अज्ञान ग्रन्थियाँ टूट जाती हैं सब संशय दूर हो जाते हैं सब शुभाशय कर्मक्षय हो जाते हैं। उस परावर परमात्मा के दर्शन हो जाने पर क्लेश सर्वथा मिट जाते है। आत्मदर्शन प्राप्त योगी को कर्म नहीं बाँध सकते। योगी ध्यान योग के बल से कर्म के संस्कार तथा सम्पूर्ण रहस्य को जानकर कर्म जाल का छेदन कर डालता है। चित्त की निर्मलता हो जाने पर कर्म रहस्य स्वयमेव उद्घाटित होते रहते हैं।

ध्यान योग जन्य योगज संस्कारों का देहपात् के साथ नाश नहीं होता है। वे ध्यानज संस्कार जन्मान्तर में संयोग पाकर पुनः चित्त में प्रकट होने लगते हैं जिससे योगी आगे आत्म साक्षात्कार के मार्ग में बढ़ने लग जाता है। ध्यान योग का फल इस जन्म में साथ–साथ मिलता है। कहा गया है कि जो समाधि की सर्वोच्च अवस्था को पा लेता है उसकी इसी जन्म में मुक्ति हो जाती है। **'विनिष्पन्न समाधिस्तु मुक्ति अत्रैव जन्मनि'** अर्थात् समाधि की पूर्णता प्राप्त योगी इसी जन्म में मुक्ति भाजन हो जाता है। इसलिये मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने आत्म कल्याण की ओर लगा रहे। जो अपने से अधिक आत्मवान हैं उनसे कभी द्रोह न करे। उनके प्रति बार–बार अपराध न करे। वैसे तो किसी भी प्राणी का मन दुःखाना नहीं चाहिये। किन्तु योगी तपस्वी का कभी भी अपमान, तिरस्कार व हिंसा न करें क्योंकि यह क्लिष्ट संस्कार बन जायेगा जिसका दुष्परिणाम इसी शरीर में भोगना पड़ेगा। इसलिये साधक को सचेत होकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहिये।

❋ ❋ ❋

हिमालय के अमर महायोगी

पूर्णचन्द्र पन्त

प्रभु रामलाल जी को साथ लेकर महाप्रभु सदाशिव का आकाश मार्ग से मणि महेश को प्रस्थान एवं एक वृद्ध योगिराज को परम गति प्रदान करना

दो दिन तक वहाँ ऋषियों का आवागमन चलता रहा। तीसरे दिन महाप्रभु सदाशिव ने देखा कि–वहाँ से सैंकड़ों मील दूर मणि महेश नामक स्थान पर एक ऋषि बड़ी व्यग्रता से उनका स्मरण कर रहा है। अतः वे एकाएक उठे और प्रभु रामलाल जी से बोले–चलो राम ! अब कहीं घूमने चलते हैं यह कहकर वे प्रभु रामलाल जी का हाथ पकड़कर चलते हुए ऊपर आकाश में चले गये। उन्होंने रामलाल जी को आँखें बन्द करने को कहा और बड़ी तेजी से उड़ते हुए वे हिमाचल प्रदेश के सीमान्त क्षेत्र में स्थित मणि महेश नामक स्थान पर (छोटा कैलाश नाम से प्रसिद्ध तीर्थ स्थल) पर पहुँच गये। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने प्रभु रामलाल जी से आँखें खुलवाई और नीचे उतरकर सीधे उस गुफा में पहुँचे जहाँ एक ऋषि ध्यानस्थ था। महाप्रभु श्री सदाशिव के आगमन का उसे ध्यान में ही अनुभव हो गया था। और उनके वहाँ विराजमान होते ही वह बड़ी व्यग्रतापूर्वक उनके चरणारविन्दों में लिपट गया। महाप्रभु जी ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया और फिर स्नेह पूर्वक उसे निहारते हुए मधुर वाणी में बोले–कहो महात्मन् ! तुमने हमें क्यों याद किया ? ऋषि बड़ी नम्रता पूर्वक बोला–प्रभो ! मेरी आत्म ज्योति अब आपके अन्दर समा जाना चाहती है। इसी हेतु मैंने आपको यहाँ आने का कष्ट दिया है। हे कृपासागर आप मुझे अनुग्रहीत कीजिये।

महाप्रभु सदाशिव ने उससे पूछा–क्या तुम्हारे पिछले सभी जन्मों के संस्कारों का भुगतान हो गया है ? ऋषि बोला–हाँ प्रभो ! मैंने अपने सभी जन्म देख लिये हैं। अब कोई संस्कार शेष नहीं रहा है। महाप्रभु जी ने उसे कहा–अपना एक सौ सातवाँ जन्म देखो।

उसने उसी समय ध्यानस्थ होकर अपना एक सौ सातवाँ जन्म देखा तो उसे पता चला कि उस जन्म में उससे एक बिल्ली की हत्या हुई थी। उसका संस्कार अभी भोगने को था। परम कृपासागर योग–योगेश्वर महाप्रभु जी ने उसका उसी समय सूक्ष्म में भुगतान करा दिया। फिर उन्होंने उसे एक सौ ग्यारह वाँ जन्म देखने को कहा। उनकी आज्ञा से उसने उस जन्म को भी अपनी ध्यान दृष्टि से देखा तो उसे पता चला कि उसके उस जन्म के भी कुछ संस्कार अभी भोगने बाकी हैं। जिसे देखकर वह हतोत्साह एवं निराश हो गया। तब महाप्रभु जी ने कृपापूर्वक उसके उन संस्कारों का भी सूक्ष्म में भुगतान करा दिया। जिससे वह ऋषि कर्म बन्धन से पूरी तरह मुक्त हो गया और योग विधि से अपनी भौतिक देह का त्याग करके महाप्रभु सदाशिव के चिन्मय देह में मिल गया। भौतिक देह योगाग्नि में स्वतः ही भस्म हो गया। इस प्रकार उस ऋषि

को परम गति देकर महाप्रभु सदाशिव जी अपने युवा शिष्य रामलालजी को साथ लेकर पहले की भाँति आकाश मार्ग से बिहार करते हुए अपनी गुफा पर लौट आये।

क्षुधानिवृति के लिये रीछ द्वारा प्रभु रामलाल जी को केले भेंट करना

वहाँ पहुँते ही वे पुन: छ: महिने के लिये समाधि में बैठ गये। उनके समाधिस्थ होते ही प्रभु रामलाल जी भी उनके चरणारविन्दों के निकट ध्यान में बैठ गये और उनकी भी समाधि लग गई। १५ दिन पश्चात समाधि खुलने पर ज्योंही वे गुफा से बाहर निकले तो अचानक एक रीछ लगभग दो दर्जन केलों का एक बड़ा सा गुच्छा लेकर भागता हुआ वहाँ आया। उसने प्रभु जी को केले भेंट किये और फिर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके चुपके से वहीं से लौट गया। प्रभु जी ने उन केलों को अपने गुरुदेव की ओर से भेजा गया प्रसाद समझकर सहर्ष ग्रहण कर लिया। वे अब अपने समाधिस्थ गुरुदेव के चरणारविन्दों में बैठकर हर समय आत्मचिन्तन में लीन रहा करते थे। वे कई वर्षों से सिद्धलोक में अपने गुरुदेव के चरणारविन्दों में वास कर रहे थे और उनकी अनेकों समाधियाँ देख चुके थे। आरम्भ में श्री महाप्रभु जी के समाधिस्थ हो जाने पर वे बड़े भक्तिभाव से उनके स्थूल शरीर की हर सम्भव सेवा किया करते थे। बाद में उन्हें यह भलीभांति अनुभव हो गया कि वे तो समाधि में रहते हुए भी सबकी रक्षा करते हैं और सभी योगियों की सहायता किया करते हैं। अत: उनके लिये हम लोगों का चिन्तित होना व्यर्थ है। वे सर्वसमर्थ हैं, सर्वेश्वर हैं और काल के भी महाकाल हैं। ऐसा विचारकर तब से लेकर वे निश्चिन्त होकर आत्मचिन्तन में लीन रहने लगे।

प्रभुजी का निर्माणकाय द्वारा भूमण्डल पर लौटना

देखते ही देखते छ: मास का समय व्यतीत हो गया और महाप्रभु जी के संकल्प पर आधारित उनकी समाधि नियत समय पर भंग हो गई। उस समय उनका रूप अत्यन्त मनोहारी दिखाई दे रहा था। उनका शरीर एक पच्चीस वर्षीय गौरवर्ण के सुन्दर युवक के समान दृष्टिगोचर हो रहा था, रोमकूपों से तेज की धारायें प्रवाहित हो रही थीं। आँखों में सूर्य के तेज के समान प्रखर तेज और चन्द्रमा के समान शीतलता थी। प्रभु रामलाल जी की ओर दृष्टि घुमाकर अपने नेत्रों से उन पर करुणा का सागर उडेलते हुए वे अत्यन्त मधुर और गम्भीर वाणी में बोले 'बेटा राम ! हम तुम्हारी गुरु भक्ति और योगप्रेम को देखकर बहुत प्रसन्न हैं। हम चाहते तो यह हैं कि तुम हमेशा हमारे पास बने रहो। किन्तु अब तुम्हें भूमण्डल पर लौटना पड़ेगा। क्योंकि वहाँ हमारे संस्कारी लाखों स्त्री पुरुष हैं जिनमें हजारों की संख्या में योगी और

ऋषि मुनि हैं। उन सबका परम कल्याण तुम्हारे द्वारा होना है। वे योगी लोग तो वर्षों से तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अतः तुम आज ही यहाँ से प्रस्थान कर दो। यहाँ से चले जाने के बाद भी तुम स्थूल रूप में सदा हमारे पास बने रहोगे। यह सुनकर प्रभु रामलाल जी आश्चर्य प्रकट करते हुए बोले– 'हे सर्वान्तर्यामी सर्वाधार प्रभो। यह कैसे सम्भव है कि–मैं यहाँ से चला भी जाऊँ और यहीं आपके चरणारविन्दों में उपस्थित भी रहूँ।' इस पर महाप्रभु जी मुस्कराते हुए बोले–चिरंजीव ! तुम्हारे लिये सब कुछ सम्भव है, तुम सब कुछ जानते हो, अतः तुम्हें कुछ भी बताने की आवश्यकता नहीं है। जाओ, हमारा बार–बार आशीर्वाद है।

अपने गुरुदेव का संकेत समझकर प्रभु रामलाल जी ने उनकी तीन बार परिक्रमा की। साष्टांग प्रणाम किया और पद्मासन में बैठकर समाधिस्थ हो गये। कुछ ही मिनटों में अस्मितानुगत समाधि में प्रवेश करके उन्होंने काय–निर्माण क्रिया द्वारा अपने शरीर से उसी प्रकार के दो नये शरीर प्रकट कर दिये। मूल शरीर वहीं समाधिस्थ रहा और चित्त निर्माण क्रिया द्वारा निर्मित शरीरों में से एक शरीर को तो नासिक भेज दिया जिसके द्वारा वर्षों तक वहाँ जनकल्याण करके बाद में उसे वहीं त्याग दिया। दूसरे शरीर को लेकर वे आकाश मार्ग से कलकत्ता पहुँचे और वहाँ से रेलगाड़ी द्वारा पंजाब की ओर प्रस्थान किया।

रामरती की प्रार्थना पर उसे दोबारा दर्शन देना और उसका आतिथ्य स्वीकार करना

यमुनिया घाट के निकट पहुँचने पर उन्हें एकाएक रामरती की स्मृति हो आई। उधर बारह वर्ष से समाधि में बैठी हुई रामरती ने अपनी दिव्य दृष्टि से प्रभु जी को उस गाड़ी से यात्रा करते हुए देख लिया। वह उनसे मिलने के लिये व्याकुल हो गई और ऐसा सोचने लगी कि कहीं ऐसा न हो कि प्रभु जी मुझे दर्शन दिये बिना ही सीधे आगे निकल जायें। वह ध्यान में बैठी–बैठी जोरों से चिल्लाने लगी–जाओ भाई, फलानी गाड़ी से प्रभु जी आ रहे हैं, जल्दी करो उन्हें सम्मानापूर्वक यहाँ लिवा लाओ। यदि विलम्ब करोगे तो वे गाड़ी में सीधे आगे निकल जायेंगे और यदि अब भी वे मुझे नहीं मिले तो मैं जीवित नहीं रह पाऊँगी। प्रभु जी भी गाड़ी में बैठे–बैठे रामरती की हालत देख रहे थे। स्टेशन आने पर ज्योंही गाड़ी रुकी वे एकदम उतरकर बाहर निकलने लगे तो स्टेशन मास्टर ने उन्हें रोक दिया और टिकट दिखाने को कहा।

प्रभु जी बोले–अरे भाई ! हम साधु महात्मा हैं। टिकट के लिये हमारे पास पैसे कहाँ धरे हैं। स्टेशन मास्टर बोला–अच्छा तो ठीक है तो फिर चलिये हमारे साथ। वह उन्हें बड़े आदर के साथ अपने कमरे में ले गया और वहाँ कुर्सी पर बैठाकर अत्यन्त विनयपूर्वक बोला–

महाराज ! क्या आप ही देवी रामरती के गुरुदेव हैं ? यदि यह सत्य है तो मुझ दीन पर भी कृपा कीजिये। आप तो सर्वशक्तिमान योगेश्वर हैं। आपका आशीर्वाद पाने के उद्देश्य से

ही मैंने टिकट के बहाने आपको रोकने की धृष्टता की है। इस अपराध के लिये मुझे आप क्षमा कीजिये। प्रभु जी अनजान बनकर बोले—अरे कौन रामरती ? हम तो किसी रामरती को नहीं जानते और न हम किसी के गुरु ही हैं हम तो एक साधारण से चलते फिरते साधु हैं।

उधर रामरती के भक्तों ने स्टेशन में आकर प्रभुजी को ढूँढना शुरू कर दिया। उन्होंने गाड़ी के सभी डिब्बे देखे और बाहर प्लेट फार्म में भी चारों ओर देखा किन्तु प्रभु जी कहीं नजर नहीं आये तो निराश होकर वे वापस चले गये और रामरती को सारा हाल बता दिया।

प्रभु जी के न मिलने का समाचार सुनकर रामरती छटपटाती हुई बोली—मेरे प्रभु जी तुम्हें प्लेटफार्म में या रेल के डिब्बों में नहीं मिलेंगे उन्हें तो स्टेशन मास्टर अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये अपने कमरे में बैठाये हुए है। दोबारा जाओ और स्टेशन मास्टर के कमरे से उन्हें ससम्मान यहाँ ले आओ। देवी रामरती की बात सुनकर वे लोग भागे—भागे दोबारा स्टेशन पर पहुँचे और स्टेशन मास्टर के कमरे की ओर गये। कमरे का दरवाजा आधा बन्द था। उन्होंने दरवाजे पर दस्तक दी और स्वयं दरवाजा खोलकर अन्दर घुस गये। उन्हें सामने स्टेशन मास्टर की कुर्सी पर एक अत्यन्त तेजस्वी जटाजूटधारी महात्मा नजर आये। स्टेशन मास्टर एक साधारण सी कुर्सी पर उनकी बगल में बैठा हुआ था। उन लोगों ने आगे बढ़कर प्रभु जी के चरणों में प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले—प्रभो ! शीघ्र चलिये। माता जी आपके दर्शनों के लिये तड़प रही हैं। यदि आपके पहुँचने में विलम्ब हो गया तो उनके प्राण निकल जायेंगे। अतः अब शीघ्र वहाँ पहुँचने की कृपा कीजिये। प्रभु जी को समझते देर न लगी। वे गम्भीर होकर बोले—अच्छा ! ऐसी बात है तो चलो चलते हैं। ऐसा कहकर शीघ्रता से उठे और बड़ी तेजी से स्टेशन से बाहर निकल गये। स्टेशन मास्टर भी उनके साथ चल पड़ा। उन लोगों ने प्रभु जी को कंधों पर उठा लिया और जय—जयकार करे हुए तेज कदमों से अपने गन्तव्य की ओर चल पड़े। थोड़ी दूर पहुँचने पर प्रभु जी ने कहा—बच्चो ! अब हमें नीचे उतार दो। तुम्हारी माता रामरती आँखें बन्द किये हुए पागलों की भाँति इसी ओर आ रही है और वह हमारे चरणों में लिपट जाना चाहती है। यदि उसे हमारे चरण न मिले तो वे मूर्च्छित हो जायेगी। प्रभु जी का आदेश पाते ही उन लोगों ने उन्हें नीचे उतार दिया और उनके पीछे—पीछे चलने लगे।

कुछ ही क्षणों में—'प्रभो ! आप कहाँ हैं प्रभो ! आप कहाँ हैं ! ऐसा प्रलाप करती हुई रामरती वहाँ पहुँच गई। वह प्रभु के चरणों से लिपट गई और भाव विह्वल होकर रोने लगी प्रभु जी ने उसे उठाकर अपने ह्रदय से लगा लिया और बोले—बेटी रामरती ! आँखें खोलो, हम तुम्हारे सामने खड़े हैं। रामरती ने आँखें खोल दी, जी भरकर प्रभु जी का दर्शन किया और सिसकती हुई बोली—प्रभु जी आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गये थे। इतने वर्षों से आपने मेरी सुध तक नहीं ली। प्रभु जी बड़े प्यार से उसका सिर सहलाते हुए बोले—अरी पगली ! हम तो हमेशा तुम्हारे

साथ ही तो रहे थे। अच्छा अब तुम हमें उस स्थान पर ले चलो जहाँ हम तुम्हें समाधि में बैठा गये थे।

यह सुनकर रामरती प्रभु जी को उस स्थान पर ले गई जहाँ बारह वर्ष पूर्व वे उसे समाधि पर बैठा गये थे और उस समय वह वीरान जंगल था। किन्तु आज उसी स्थान पर चारों ओर बड़े–बड़े भव्य मन्दिर और धर्मशालायें बन चुकी हैं, यह देखकर प्रभु जी बोले–

रामरती तुमने यह क्या प्रपंच फैला रखा है ? हम तो तुम्हें समाधि में बैठा गये थे। रामरती हाथ जोड़कर विनीत भाव से बोली–प्रभो ! यह सब आपकी ही लीला है। मुझे कोई ज्ञान नहीं है कि यह सब निर्माण कार्य कब और कैसे हुआ, मैं तो अब तक उस स्थान से हिली तक नहीं जहाँ आप मुझे बैठा गये थे। बारह वर्ष में आज पहली बार मैंने आपके दर्शनार्थ आँखों खोली हैं।

प्रभु जी ने कहा–अच्छा ठीक है। तुम इसी प्रकार आँखें बन्द किये रहो और लोगों का कल्याण करती रहो। प्रभु जी ४–५ दिन वहाँ रहे और रामरती के हर क्रियाकलाप को गौर से देखते रहे। उसकी पवित्र दिनचर्या को देखकर वे बड़े प्रसन्न हुये। योगिनी रामरती के आनन्द का कोई ठिकाना न था। जिस दिन प्रभु जी वहाँ से जाने को तैयार हुये तो रामरती बोली–मेरे प्राणाधार प्रभो ! अब आप मुझे छोड़कर मत जाइये। जहाँ भी जाना हो तो मुझे भी साथ लेते जाइये। मैं अब आपके बिना जीवित नहीं रह सकती।

प्रभु जी ने रामरती को बहुत समझाया किन्तु वह मानी नहीं और चरण पकड़कर बैठ गई। तब वे उसे भी साथले जाने को तैयार हो गये। उसके शिष्यों को जब इसका पता चला तो वे श्री प्रभु जी से अनुनय विनय करने लगे–प्रभो ! सुना है आप बड़े दयालु हैं, हम पर दया कीजिये, ऐसा अनर्थ मत कीजिये। माता जी यदि यहाँ से चली गईं तो हम लोगों का क्या होगा ? हम तो इन्हीं के सहारे जीवित हैं उन लोगों की करुण प्रार्थना सुनकर और उनकी आन्तरिक व्यथा को जानकर प्रभु जी का हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने रामरती के मन में प्रेरणा करके उसे वहीं रहने के लिये राजी कर लिया। तब प्रभु जी वहाँ एकत्रित सत्संगियों और योगिनी रामरती के साथ बैठकर कुछ समय तक योगचर्चा करते रहे और फिर वहाँ से प्रस्थान करने को खड़े हो गये। योगिनी रामरती ने अपने प्राणप्रिय गुरुदेव को भावभीनी विदाई दी। वह उन्हें विदा करने अपने शिष्यों के साथ रेलवे स्टेशन तक जाना चाह रही थी, किन्तु प्रभु जी ने उसे रोकते हुए कहा– 'तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नहीं है। तब उसके शिष्यों ने रेलवे स्टेशन तक जाकर उन्हें गाड़ी में बिठाकर ससम्मान विदा किया।

❋ ❋ ❋

"सिद्धयोग की साधना"

डा० विजय सिंह

बहुत दिनों बाद अकस्मात कुछ बातें स्मृति में उभर रही है। मिर्जापुर में लब्धप्रतिष्ठित वैद्य श्री रामलखन जी के यहां सद्गुरु भगवान का योग प्रचार कार्यक्रम हुआ करता था। कभी विन्ध्य–पर्वत के सुन्दर झरनों (टांडा फाल) में स्नान का कार्यक्रम प्रातः होता कभी काली खोह, आदि का पर्यटन करने के लिये शिष्यों के साथ सद्गुरु भगवान जाया करते थे।

काली खोह भवानी विन्ध्यवासनी से दक्षिण चार किलोमीटर की दूरी पर है। पुराने समय में यह अत्यन्त भयावह स्थान माना जाता रहा है। तांत्रिकों और कपालिकों की गूढ़ वीभत्स साधना स्थली के रूप में काली–खोह विख्यात रहा है। यहाँ तांत्रिक लोग प्राकृतिक शक्तियों के लिये नर बलि चढ़ाया करते थे।

सद्गुरु भगवान के साथ मुझे भी इस स्थान पर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उस समय मैं शोधरत था। प्राचीन परकोटे से घिरा मंदिर अन्दर आंगन में प्राचीन कूप। श्री गुरुदेव भगवान को इसी कूप से जल निकालकर स्नान कराया था ब्रह्मचारी जी लोगों ने। मैं पास में खड़ा मुग्धभाव से श्री प्रभुजी को स्नान करता देख रहा था। तौलिया, धोती, कुर्ता लिये हुये मैं खड़ा था। तौलिया से शरीर पर के जल को पोछने के बाद। धोती श्री सद्गुरु भगवान स्वयं लेकर पहनते हुये बोले–लल्ला। इस जगह पूर्वकाल में आनन्दकन्द महाप्रभु जी मुखराम और हरिहरानंद के साथ आये थे। यहीं सवरक्षार्थ मंत्र सिद्धि अपने दोनों शिष्यों को कराया था। तथा यहाँ के तांत्रिकों पर शासन करके (वशवर्ती बना करके) उनको नर–वली न करने का आदेश दिया था। तब से नरवली बन्द यहाँ हुआ। थोड़े देर बाद जब हम लोग लौटने वाले थे, एक वृद्ध व्यक्ति वहाँ आया। उससे पूछने पर कि क्या यहाँ पहले नरवली चढ़ा करता था। उसने सहज स्वीकारा और कहा कि जब हम छोटे थे तब पंजाब से एक महात्मा नीरवर्ण के आये उन्होंने यहाँ के तांत्रिकों को ताड़ना दी और आगे नर–बलि देने से मना कर दिया।

आध्यात्मिक कुरीतियों को किस प्रकार श्री महाप्रभुजी ने जगह–जगह दूर किया, यह प्रकरण नर्वदा के तट पर प्रेतबाधाओं से ग्रसित बरगद के विशाल वृक्ष चौतरे की कथा तथा उपद्रवी महात्मा, भैरव सिद्धका मान मर्दन हरिहरानन्द जी द्वारा कराने से स्पष्ट होता है। वहीं दूसरी ओर रामरती कामवासना के कीच में पड़ी थी उसका उद्धार कर परम सिद्धयोगिनी बना दिया था।

श्री गुरुदेव जी काली गुफा में वस्त्र पहनते हुये अपने परमाराध्य श्री महाप्रभुजी द्वारा नर बलि प्रथा को रोकने की बात बताये वहीं मुझसे बोले–लल्ला ! तुम तो विश्वविद्यालय में पढ़ते हो, अबकी जाकर पुस्तकालय से एकनाथ, जनार्दन स्वामी, ज्ञानदेव नामदेव, तुकाराम आदि महापुरुषों के जीवन चरित्र को पढ़ना व उन्हें लेख बद्धकर भेजना 'सिद्धयोग' में हम प्रकाशित करायेंगे। आगे चलकर इन महापुरुषों के जीवन चरित्र के पढ़ने से एक सार मन में बैठा कि कलिकाल के कठिन (मुगलों का संत्रस्त–विधर्मी अभियान) काल में यह सभी सिद्धों की अनुकम्पा से, सद्गुरु शरणागतता, अनन्य निष्ठा से सहज सामाजिक जीवन जीते हुये आत्म

लाभ जैसे दुर्लभ परम प्राप्ति को प्राप्त हुये। मुझे ठीक स्मरण है कि वाराणसी में योग प्रचार (उन दिनों काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में कई वर्ष सतत्, पुनश्च डा० ऋषिराम शर्मा जी के निवास स्थल नगवा, तद्पश्चात् अनेक वर्ष सतत् आदरणीय आत्मा प्रसाद सिंह) के काल में श्री गुरुदेव जी ने एक रोज आदेश दिये--लल्ला ! वाराणसी में धार्मिक पुस्तकों के कई विख्यात दुकानें हैं तुम वहाँ जाकर एक पुस्तक लाना उसका नाम है "सहज-प्रकाश" रचनाकार गुरुभक्तिमती सहजो बाई है। मैं कचौड़ी गली, बनारसी दास बुकसेलर, आदि के यहाँ पूछा परन्तु कृत--कार्य नहीं हुआ। यह पुस्तक आजतक मुझे नहीं प्राप्त हुआ। हाँ, आगे चलकर सहजोबाई के परमाराध्य श्री चरणदास की छंद रचनायें जो उत्कृष्ट योग भक्ति परक हैं देखने को मिलीं। बड़ा आश्चर्य हुआ हम लोगों के षट–चक्र उपदेश और मंत्र की समानता का सजीव सटीक वर्णन देखकर।

प्रयागराज में, अत्यन्त विनोद करते हुये श्री प्रभु जी ने कहा--लल्ला ! एक पुस्तक "आटो वाई ग्राफी आफ ए योगी" परमहंस योगानन्द की है। उसमें श्री बाबाजी का चरित्र स्वयं महाप्रभु जी का चरित्र है। लाहड़ी महाशय को अल्मोढ़ा के पहाड़ पर बुलाकर स्वर्ण महल में दीक्षा दिया था। इस पुस्तक को खूब मन लगाकर पढ़ना और लेख लिखना। अब यह पुस्तक हिन्दी में अनुदित हो चुका है। उस समय अंग्रेजी में ही मात्र उपलब्ध था। तीसों लेख अनुवाद रूप में प्राचीन "सिद्धयोग" में श्री गुरुदेव भगवान ने प्रकाशित कराया था।

एक समय ऐसा था कि विलक्षण आध्यात्मिक पुस्तकें बिना प्रयास पढ़ने को मिलती थी। उन दिनों मैं चैतन्य चरितावली श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी का बड़े रुचि पूर्वक पढ़ रहा था। कछवा के प्रोग्राम में श्री गुरुदेव भगवान सम्प्रज्ञात योग पर प्रवचन करते हुये आनन्दानुगम समाधि के बारे में बताते हुये बोले देखो जो योग में वितर्कानुगम के अन्दर स्थूल दृश्यों को देखते हैं वे ही अभ्यास और वैराग्य के होने पर विचारानुगम समाधि में प्रवेश पा जाते हैं। अब साधक को सूक्ष्म दृश्य (पंच तन्मात्राओं) में मन एकाग्र होने लगता है। देवलोकों के नजारे तथा देवताओं के प्रलोभन आदि का भय साधक को ऐसी स्थिति में रहा करता है। परन्तु जो सद्‌गुरु देव के कंट्रोल में शिष्य होता है। उसको गुरुदेव की कृपा से संरक्षण एवं पतन से रक्षा होती है। गंध, रूप, रस, शब्द, स्पर्श से होने वाले आनन्द का अपार समुद्र साधक के सामने आता है। इस अथाह आनन्द में लीन आनन्दानुगम समाधि वाला योगी अपने को कृत–कृत्य हुआ समझने लगता है। वह समझता है कि इन तन्मात्राओं के आनन्द के आगे अब कुछ नहीं है। जो होना था वह पा लिया। परन्तु ऐसा नहीं है। इस अवस्था में देह पात होने पर उच्च लोकों में साधक तन्मात्राओं के आनन्द में करोड़ों–करोड़ो वर्षों तक पड़ा रहता है। परन्तु आगे चलकर उसे पुनः जन्म लेना पड़ता है। जैसे चैतन्य महाप्रभु आदि।

श्री चैतन्य चरित्र के दिव्य–भाव का अर्थ उस दिन अर्न्तयामी सद्‌गुरु देव जी ने अपने प्रवचन में समझा दिये। समझ में आया कि कैसे श्री कृष्ण के अंग से निकलने वाले दिव्य गंध का भान होते ही श्री चैतन्य आनन्द में अपने देह–गेह की सुधि भूलकर बेहोश–मदहोश हो जाते थे।

* * *

बहुत किया अभिमान.......

–राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

बहुत किया अभिमान भक्ति सेवा पर अब मैं हारा
आती है अति लाज करूँ, कैसे गुणगान तुम्हारा

सोच रहा था प्रेम किया है, सच्चा मैंने तुम से
तभी सोचने लगा जगत में, नाम कमाऊँ कैसे
बेच रहा था काम क्रोध के बदले प्रेम तुम्हारा
आती है अति.......

कल तक झूम रहा था तेरे, मधुर प्रेम बोलो' में
कितनी दूर हो गया तुम से ! बोलों ही बोलों में
कैसे आँख मिलाऊँ प्रभु मैं, नीच लाज का मारा
आती है अति...........

अहंकार हर लो मेरा, मन निर्मल कर दो मेरा
मुझको वहीं बना रहने दो, जहाँ प्रेम हो तेरा
चित्त वृत्तियों के निरोध बिन, मिले न योग तुम्हारा
आती है अति.............

भक्ति की अग्नि में, जिसने चित्त के दोष जलाऐ
प्रभु प्रेम के मेघ उमड़, उसकी आँखों में आऐ
पाया उसने ही तुमको बस होता वही तुम्हारा
आती है अति.......

क्षमा–याचना को मेरी, सेवा स्वीकार कीजिए
सेवा में अपमान सहन की, शक्ति मुझे दीजिए
नीच, अधम, अति दीन शरण में बालक एक तुम्हारा
आती है अति.......

बहुत किया अभिमान भक्ति सेवा पर अब मैं हारा
आती है अति लाज करूँ कैसे गुणगान तुम्हारा

रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी

कुण्डलिनी तथा आध्यात्मिक जागृति

—बिना कुण्डलिनी के जागे चैतन्य प्राप्त नहीं होता। मूलाधार में कुण्डलिनी सुप्त रहती है। जाग जाने पर वह स्वाधिष्ठान, मणिपुर आदि चक्रों को भेदती हुई अन्त में मस्तक में जा पहुँचती है, तभी समाधि होती है। यह सब मैंने प्रत्यक्ष देखा है।

—ईश्वरदर्शन का एक लक्षण यह है—भीतर से महावायु घरघराकर उठती हुई मस्तक पर जा पहुँचती है। तब समाधि होकर भगवान के दर्शन प्राप्त होते हैं।

—कुण्डलिनी—जागरण के समय होने वाली अनुभूति का वर्णन करते हुए श्री रामकृष्ण ने कहा था : 'वह सर सर करती हुई पैर से सिर की ओर उठती है। जब तक वह सिर तक नहीं पहुँचती तब तक मेरे होश रहते हैं; पर ज्योंही वह सिर पर चढ़ जाती है त्योंही मैं बिलकुल बेसुध हो जाता हूँ। तब देखना—सुनना तक बन्द हो जाता है, फिर बातचीत करने का सवाल कहाँ ! बातचीत करे कौन ?—'मैं' 'तुम' यह बुद्धि ही चली जाती है। मैं सोचा करता हूँ कि तुम लोगों को सब बताऊँ। जब तक वह (क्रमशः हृदय और कण्ठ को दिखाते हुए) यहाँ तक या ज्यादा से ज्यादा यहाँ तक उठ आती है, तब तक बताया जा सकता है और मैं बताता भी हूँ, पर जैसे ही वह (कण्ठ को दिखाते हुए) इस जगह को पार कर ऊपर उठती है, वैसे ही मानो कोई मेरा मुँह पकड़ दबाता है—तब सब गड़बड़ा जाता है, मैं कुछ सम्हाल नहीं पाता। (कण्ठ दिखाकर) इसके ऊपर चढ़ने से जो दर्शन होते हैं उन्हें बताने के लिए जैसे ही मैं उनका विचार करता हूँ, वैसे ही मेरा मन झट से ऊपर चला जाता है—फिर मैं कुछ बता नहीं पाता।"

कण्ठ से ऊपर वाले चक्रों में मन के पहुँचने पर जो दर्शन होते हैं, उन्हें बतलाने के लिए श्रीरामकृष्ण ने कितनी बार प्रयत्न किया, पर उन्हें हर बार असफल होना पड़ा। एक दिन उन्होंने बड़े निश्चय के साथ उन बातों को बतलाना आरम्भ किया। मन के कण्ठ तक के चक्रों तक पहुँचने पर जो दर्शनादि होते हैं उनका उन्होंने भलीभाँति वर्णन किया। फिर भौंहों के मध्यस्थल का निर्देश करते हुए वे बोले, "मन के इस स्थान पर पहुँचते ही जीव को परमात्मा के दर्शन होते हैं और वह समाधिमग्न हो जाता है। तब परमात्मा और जीवात्मा के बीच केवल एक स्वच्छ, पतला—सा परदा ही आड़ रह जाता है। उस समय वह ऐसा देखता है कि—" इस प्रकार ज्योंही वे परमात्मा के दर्शन का विशेष रूप से वर्णन करने गए त्योंही वे समाधिस्थ हो गए ! समाधि टूटने के बाद उन्होंने फिर बतलाने की कोशिश की, पर फिर वे समाधिस्थ हो गए ! इस तरह बार—बार प्रयत्न करने के बावजूद असफल होकर उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा, "अरे, मैं

तो सचमुच चाहता हूँ कि तुम लोगों को सब बातें बताऊँ, थोड़ा भी न छिपाऊँ, पर माँ किसी हालत में बताने नहीं देती—मुँह पकड़ लेती है।''

—कुण्डलिनीशक्ति के सुषुम्नामार्ग से ऊपर उठते समय जो विभिन्न प्रकार के अनुभव होते हैं, उनके बारे में श्रीरामकृष्ण कहा करते—''वह जो सर सर करती हुई मस्तक पर चढ़ती है, वह हमेशा एक ही प्रकार से नहीं चढ़ती। शास्त्रों में उसकी पाँच प्रकार की गति का उल्लेख किया गया है। (१) पिपीलिकागति—जैसे चीटियाँ मुँह में खाने की चीज लेकर एक कतार में सुरसुराती हुई चली जाती हैं, वैसे ही पैरों में एक किस्म की सुरसुराहट सी शुरू होकर वह क्रमशः धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठने लगती है, जब वह सिर तक जा पहुँचती है तब समाधि लग जाती है। (२) भेकगति—जिस प्रकार मेढ़क दो—तीन बार उछलकर थोड़ा रुक जाता है, फिर दो—तीन बार उछलकर थोड़ी देर रुक जाता है, ठीक उसी प्रकार कोई वस्तु पैरों की ओर से चलकर मस्तक पर चढ़ती हुई सी प्रतीत होती है, उसके मस्तक पर चढ़ते ही समाधि लग जाती है। (३) सर्पगति—जिस प्रकार साँप लम्बे होकर या कुण्डली के आकार में चुपचाप पड़े रहते हैं, परन्तु जैसे ही सामने कोई शिकार देख लेते हैं या भयभीत हो जाते हैं, वैसे ही सरसराकर टेढ़ी—मेढ़ी गति से भागने लगते हैं, उसी प्रकार वह भी सरसराती हुई एकदम मस्तक पर जा पहुँचती है और तत्काल समाधि लग जाती है। (४) पक्षी गति—पक्षी जिस प्रकार एक जगह से दूसरी जगह जाकर बैठते समय भुर्र से उड़कर कभी कुछ ऊँचे चढ़ते तो कभी कुछ नीचे उतर आते हैं, किन्तु कहीं विश्राम नहीं लेते, जहाँ बैठने की ठानी है एकदम वहीं जाकर बैठते हैं, उसी प्रकार वह सीधे मस्तक पर चढ़ जाती है, और साधक को समाधि लग जाती है। (५) वानरगति—लंगूर जैसे एक पेड़ से दूसरे पर जाते समय 'हूप' करते हुए एक डाली से दूसरी डाली पर जा पहुँचते हैं, वहाँ से फिर 'हूप' करके और एक डाली पर कूद जाते हैं, इस तरह दो—तीन छलाँगों में जहाँ जाने का विचार है वहाँ पहुँच जाते हैं; वैसे ही वह भी दो—तीन छलाँगों में मस्तक पर जा पहुँचती है और तत्काल समाधि लग जाती है।''

—इन दर्शनों की वेदान्त के दृष्टिकोण से व्याख्या करते हुए वे कहते—''वेदान्त में सप्तभूमिकाओं का उल्लेख है। प्रत्येक भूमि में भिन्न—भिन्न प्रकार के दर्शन होते हैं। मन स्वभावतः गुदा, लिंग और नाभि, इन तीन निम्न स्तर की भूमियों में ही चढ़ता—उतरता रहता है, उसकी दृष्टि इन्हीं में—खाना, पीना, मैथुन आदि में है—निबद्ध रहती है। इन तीन भूमियों को पार कर यदि मन चौथी भूमि हृदय तक जा पहुँचे तो साधक को ज्योति के दर्शन होते हैं। किन्तु हृदय तक उठने के बाद भी कभी—कभी मन पुनः नीचे की तीन भूमियों में—गुदा, लिंग, नाभि में उतर आता है। हृदय का अतिक्रमण कर यदि किसी का मन पाँचवीं भूमि कण्ठ तक जा पहुँचे तो फिर वह ईश्वरीय चर्चा छोड़कर अन्य किसी भी प्रकार की बातें—विषयसम्बन्धी बातें

इत्यादि—नहीं कर सकता। उस अवस्था में मुझे ऐसा ही हुआ करता—यदि कोई विषयसम्बन्धी चर्चा करने लगता तो मुझे ऐसा लगता कि मानो मेरे सर पर कोई लाठी मार रहा हो; मैं दूर पंचवटी की ओर भाग जाता ताकि वह सब सुनना न पड़े। विषयासक्त लोगों को देखते ही मारे डर के छिप जाता। आत्मीय—स्वजन मानो कुएँ जैसे प्रतीत होते, ऐसा लगता, मानो वे मुझे घसीट कर कुएँ में गिराने का प्रयत्न कर रहे हैं : एक बार गिर पड़ने से फिर उठ न सकूँगा। दम घुटने लगता, ऐसा लगता कि प्राण अब गए, तब गए। वहाँ से भाग आने पर तब कहीं शान्ति मिलती ! कण्ठ में पहुँचने के बाद भी मन पुनः गुदा, लिंग, नाभि में उतर सकता है, इसलिए तब भी सावधान रहना चाहिए। फिर कण्ठ का अतिक्रमण कर यदि किसी का मन भौंहों के मध्यस्थल तक जा पहुँचे तो फिर उसके पतन की आशंका नहीं रहती। उस समय वह परमात्मा के दर्शन प्राप्त कर निरन्तर समाधिमग्न रहता है। इसके तथा सहस्त्रार के बीच केवल एक काँच की तरह स्वच्छ परदे भर की आड़ है। इस समय परमात्मा इतने निकट होते हैं कि साधक को ऐसा प्रतीत होता है मानो मैं उनमें मिल गया हूँ, उनके साथ एक हो गया हूँ; परन्तु तब भी वह एक नहीं हुआ है। यहाँ से मन यदि कभी नीचे उतरे तो अधिक से अधिक कण्ठ या हृदय तक ही उतरता है—उसके नीचे नहीं उतर सकता। जीवकोटि के साधक यहाँ से फिर नहीं उतरते—उनके इक्कीस दिन तक निरन्तर समाधि में लीन रहने के बाद वह व्यवधान या परदा छिन्न हो जाता है तथा वे परमात्मा के साथ पूर्णतया मिलकर एक हो जाते हैं। सहस्त्रार में परमात्मा के साथ सम्पूर्ण एक हो जाना ही सप्तम भूमि में चढ़ना है।''

नकली भावावस्था

—किसी व्यक्ति को संकीर्तन आदि में अत्यधिक भावोच्छ्वास के कारण एक प्रकार का आवेश होता था जो बाहर से भावसमाधि की तरह दिखाई देता था। श्रीरामकृष्ण ने उसे देखकर कहा था—''ठीक-ठीक' भावावस्था होने पर क्या कभी ऐसा होता है ? उसमें तो मनुष्य डूब जाता है, स्थिर हो जाता है। यह क्या ? स्थिर हो, शान्त हो ! (दूसरे श्रोताओं से) ये सब किस प्रकार के भाव हैं जानते हो ? जैसे कड़ाही में छटाँक भर दूध डालकर उसे चूल्हे पर औटाया जा रहा हो। उफान उठकर ऐसा दिखाई देता है मानो कितना दूध है, कड़ाही भरी हुई है। फिर उतारकर देखो तो दूध बिलकुल ही नहीं है, जो थोड़ा सा था वह भी सूखकर कड़ाही से ही लिपट गया है।''

❋ ❋ ❋

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह

देवे योग का संदेश, सवांई प्यारी नगरी
प्रभु रामलाल का देश, सवांई प्यारी नगरी

इस नगरी के जीर्णोद्धारक, श्री चन्द्रमोहन महाराज
जड़ चेतन के बने उद्धारक, भूत, भविष्यत, आज
हैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सवांई प्यारी नगरी
प्रभु रामलाल का........

आर्त भाव जो किया पुकार, पाया प्रभु के पास
पुण्यों की गंगा बहने लगती, होवे पाप का नाश
काटे अमीट कलेश सवांई प्यारी नगरी,
प्रभु रामलाल का........

जीवन तत्व से कायाकल्प, यहाँ का मूल आधार
रज सेवत से योगी बनते कहता है संसार
कोटि प्रभु का भेष, सवांई प्यारी नगरी
प्रभु रामलाल का........

आओ भाई बहना आओ, देर करो न आने में
तन–मन अर्पित कर दो तुम, प्रभु प्रेम को पाने में;
हो जीवन धन्य राजेश, सवांई प्यारी नगरी;
प्रभु रामलाल का.......

* * *

सद्गुरू-महिमा

अनिल कुमार सिंह

गुरुर्ब्रह्मा गुरु विष्णु गुर्रुदेवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

सद्गुरू या 'गुरुदेव' एक ऐसा शब्द है जो प्रायः सभी को मान्य है और लगभग इस धराधाम पर प्रत्येक व्यक्ति जो किसी भी ढंग से गुरुदेव के चरणों में अपने को अर्पित कर चुका है अथवा शरणागति की प्राप्ति कर चुका है उनके लिए उनके सद्गुरु गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं।

गुरुदेव की महिमा का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाना है। गुरुदेव की महिमा का वर्णन किस प्रकार किया जाय बड़ी भारी विवशता है।

''सब परवत स्याही करु, घोर समुन्दर मजाय।
धरती सब कागद करु, गुरु गुन लिखा न जाय।।''

इन्हीं शब्दों के साथ क्या कोई माध्यम है जिससे गुरुदेव की अपार महिमा का या उनके विशालतर गुणों का किस प्रकार, कैसे एवं कहाँ तक वर्णन इस तुच्छ लेखनी से किया जाय। गुरुदेव की महान महिमा का वर्णन एक मात्र उन्हीं की कृपा-कोर से लेखनी तथा उन्हीं गुरुदेव की महान कृपाओं का अवलम्ब है।

अपने उन्हीं आनन्द कन्द सर्वन्तयामी परम कृपालु श्री गुरुदेव जी के चरण-कमलों का ध्यान एवं स्पर्श कर उन्हीं से याचना कर यह विचार स्पष्ट करती हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी श्री गुरुदेव की वंदना करते हैं-

'बन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रुपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्धते।।

पुनः लिखते हैं-

बन्दौ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नररुपहरि।
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

"गुरु के चरण कमलों को नमस्कार करता हूँ कैसे गुरुजी है ? (कृपासिन्धु) दया के समुद है और कैसे है (नररूप हरि) मनुष्य रूप धारण किए साक्षात् विष्णु भगवान है और कैसे है (महा-महतमपुंज) महामोह रूपी घने अहंकार के ढेर को, (जासु वचन) जिन गुरुदेव महाराज का वचन (रवि कर निकर) सूर्य की किरणों का समूह हैं। अर्थात् जिस प्रकार सूर्य की किरणों से अंधकार मिट जाता है उसी प्रकार गुरुदेव के वचन से हृदय में जो अंधकार (अज्ञान का) है वह दूर हो जाता है।

आज के परिवेश में सदगुरु की महत्ता से अपरिचित मानव सदगुरू-महिमा का वर्णन सुन

देखकर आश्चर्य चकित हो, उसके मन में यह प्रश्न उठता है कि यह सब क्या हो रहा है। इस प्रकार की दिव्य पूजा–भक्ति तो ईश्वर अथवा भगवान की ही जाती है। यह दिव्य ढंग मानव शरीर धारण किये एक गुरुदेव की हो रही है। यह गुरु भक्ति की बात क्या है। गुरु तो ईश्वर प्राप्ति के साधन है साध्य नहीं ? फिर गुरुदेव की पूजा भगवान के समान क्यों की जाती है ? इन सब बातों का स्पष्टीकरण कतिपय शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार की जाती हैं–

गुरुदेव एवं भगवान में अन्तर समझने वाले प्राणी मात्र को भगवान की कृपा अथवा भगवान का अनुग्रह कभी प्राप्त हो ही नहीं सकता, परम आदरणीय शंकराचार्य ने अपने "सर्व–वेदान्त–सिद्धान्त" सार संसार में लिखा है–

"शिव एवं गुरुरसाक्षात् गुरुरेव शिवः स्वयं।
उभयोरन्तर किञ्चिय द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः।।"

अर्थात् शिव ही स्वयं साक्षात् गुरु है और गुरु स्वयं शिव है। मोक्ष प्राप्ति साधक कभी भी इन दोनों में भेद न देखें। भगवान पातंजलि योग सूत्र में लिखते हैं–**"न पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।"** अर्थात गुरु सत्ता पूर्वजों का भी गुरु है क्योंकि उसका काल से अवच्छेद नहीं है वह अनादि (आदि अन्त से रहित) काल के दायरे से बाहर यानी कालातीत काल का महाकाल है। अतः गुरु सत्ता है। सद्गुरु और ईश्वर में कोई भेद नहीं है।

भगवान अथवा ईश्वर के रुष्ट होने पर जीव मानव मात्र की सद्गुरु के माध्यम से रक्षा हो सकती है किन्तु गुरुदेव के रुष्ट होने पर इस धराधाम पर कोई त्राण देने वाला नहीं है। यथा–श्री रामचरित मानस ग्रन्थ एवं गुरु गीता स्पष्ट करती है–

राखइ गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहिं कोउ जग त्राता।। रा.च.मा.

श्री गुरु गीता कहती है जो स्वयं भगवान शिव का उपदेश है–

हरौ रुष्टे गुरु रक्षाता, गुरौ रुष्टे न कश्चन।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन, गुरु आराधयेद् बुधः।।

इसी तत्व के विषय में योगी कबीर दास जी के समक्ष एक असमंजस की स्थिति उत्पन्न हुई–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौ पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।।

पुनः कबीर दास जी स्पष्ट करते हुए सद्गुरु की बताई पद्धति पर चलकर व अपने साधना पथ पर आगे चलकर परमावस्था में पहुँचे जहाँ ईश्वर का वर्णन किया–

'मन ऐसा निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पीछे-पीछे हरि फिरैं, कहत कबीर-कबीर।।

सद्गुरु में मानव बुद्धि समझना यह अपनी ही अज्ञानता है अनेकानेक शास्त्रों ने स्पष्ट किया गुरु सत्ता ही ईश्वर सत्ता है श्री अग्रदास जी ने कहा है–

"गुरुन बिसे नर बुद्धि शिला, सम गनै विष्णुतन।
चरणामृत जल जान, मंच वदै वानी सम।।
महाप्रसाद ही अन्न, साधु की जाति पिछाने।
ते नर नरकै जाय, वेद स्मृति बखाने।।
अग्र कहे यह पाप घट, अति मोटो दुर्घट विकट।
और पाप सब छुटै पैहून, मिटै हरि नाम रट।।

योग शिखो उपनिषद में स्पष्ट है–

जो गुरु है वही ईश्वर है जो ईश्वर वही गुरुदेव है।

"यथा गुरु स्तथै वेशः यथैवेशः तथा गुरुः।
पूज्यनीयो महाभक्त्या न भेदो विद्यतेऽनयोः।।

अतः गुरुदेव को ईश्वर सम उत्कृष्ट भक्ति भाव से पूजन करना चाहिए।

जिस शिष्य में गुरु भक्ति नहीं वह आत्म तत्व के प्रकाश से सर्वथा वंचित रह जाता है, गुरुदेव के प्रति जिस शिष्य की भक्ति नहीं है वह शिष्य अपने गुरुदेव द्वारा शक्तिपात अथवा कृपा होने पर भी शान्ति की प्राप्ति से वंचित रह जाता है यह बात यथार्थतः सत्य है– कि जब तक अपने गुरुदेव शक्तिपात नहीं करते तब तक मानव मात्र के लिए चरम आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने का दरवाजा बन्द रहता है–

योग शिखोपनिषद में है–

'आधार शक्ति निद्रायां विश्वं भवति निद्रया।
तस्यां शक्ति प्रबोधेन त्रैलोक्यं पुति बुध्यते।।

गन्धर्व तन्त्र एवं गौतमी तन्त्र में है–

"मूल पद्मे कुण्डलिनी यावनिदायिता प्रभो।
तावत् किञ्चितं सिध्येत मंत्र यंत्रार्चनादिकम्।।

अर्थात् जब तक मूलाधार में कुण्डलिनी शक्ति सोई हुई है। तब तक मंच, मंत्र, अर्चना आदि सफल नहीं हो सकते। उसे जागृत करने हेतु श्री गुरुदेव के चरण कमलों की शरणागति परम आवश्यक है।

परम सद्गुरु की भक्ति द्वारा ही आत्म तत्व प्रकाशित होकर मानव मात्र को चरमावस्था पर ले जाता है–

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
यस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

भगवान शिव–पार्वती से कहते हैं–

यस्य भक्तिर्गुरो नित्यं वर्तते देवव्रत प्रिये।
तस्य सर्वार्थ-सिद्धिः स्यान्नान्यथा खलु पार्वति।।

अर्थात् हे प्रिये। जिसकी श्री गुरुदेव में ईश्वर के समान भक्ति रहती है उसके समस्त उद्देश्य सिद्ध होते हैं, सर्वार्थ सिद्धि का इससे कोई अलग रास्ता नहीं हैं।

शारदा–तिलक में स्पष्ट है–

"गुरुं न मर्त्य बुध्येत यदि बुध्येत तस्यतु।
कदापि न भवेत सिद्धिर्न पूजनैः।।"

श्री गुरुदेव में कभी मर्त्य अर्थात मनुष्य भाव नहीं करना चाहिए। जो श्री गुरुदेव में मनुष्य भाव रखता है उसे मंत्र जप और ईश्वर (देवताओं) के पूजन से कभी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

श्री गुरुदेव ही ईश्वर सदृश अथवा ईश्वर के रूप में आते हैं, गुरुदेव और भगवान में कोई अन्तर नहीं। श्री शंकराचार्य जी वेदान्त–सार–संग्रह में लिखते हैं–

"जन्मानेक शतैः सदाचार, युजा भक्त्या समाराधितो।
भवते वैदिक लक्षणेन विधिना, सन्तुष्ट ईशः स्वयम्।।
साक्षात् श्री गुरु रूपमेत्य, कृपया दृगगोचरः सन् प्रभु।
तत्वं साधु विबोध्य तारयति, तान् संसार दुखार्णवात्।।"

अर्थात् अनेकानेक, जन्मजन्मान्तर के शुभ संस्कार के उदय एवं सदाचार युक्त भक्ति, कर्मकाण्डों के अनुष्ठान, ईश्वर आराधना होने पर ईश्वर सन्तुष्ट होकर स्वयं साक्षात् सद्गुरु देव के रूप में गोचर होते हैं, तथा तत्व बोध कराकर संसार रूपी दुःख का उद्धार कर देते हैं।

मनुस्मृति का कथन है–मातृ भक्ति से इस लोक की, पितृ भक्ति से मध्य लोक की तथा गुरु भक्ति एवं सेवा से ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है।

"इमं लोकं मातृ भक्त्या पितृ भक्त्यातु मध्यमम्।
गुरु शुश्रुषया त्वेवं ब्रह्मलोकं यामुश्नुते।।"

भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली सारी क्रियायें गुरु कृपा पर ही निर्भर है अतः सर्वदा तन्मय होकर श्री गुरुदेव की ही सेवा–भक्ति, चिन्तन करनी चाहिए।

श्री गुरु गीता स्पष्ट करती है–

"गुरुरेव जगत्सर्व ब्रह्मा विष्णु शिवात्मकम्।
गुरोः परतरं नास्ति, तस्मात्संपूजयेद गुरुम्।।"

अर्थात् गुरुदेव ही विश्व रूप है वही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव का आत्मा है। गुरुदेव से श्रेष्ठ कोई नहीं है अतः श्री सद्गुरुदेव का सम्यक प्रकार से पूजन करें।

आगे पुनः गुरुगीता कहती है—

'यस्मात्परतरं नास्ति नेति नेतीति वै श्रुतिः।
मनसा वचसा चैव सर्वदाराधयेद गुरुम।।''

जिससे परे कोई नहीं। श्रुति जिसे नेति-नेति कहती है उस गुरुदेव की आराधना मन एवं वाणी से करें। पुनः

''गुरोः कृपा प्रसादेन ब्रह्मा विष्णु महेश्वरः।।
सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरु सेवया।।''

गुरु की कृपा के प्रसाद से ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर हुए है, उन्हें सामर्थ्य प्राप्त हुआ है केवल गुरुदेव की प्रसाद से।

अन्त में भगवान सदाशिव माता पार्वती से कहते हैं—

''न गुरारेधिकं तत्वं न गुरोरधिकं स्मरेत्।
गुरु ज्ञानात्परं तत्वं तस्मै श्री गुरुवे नमः।।''

अर्थात् गुरु से अविक कोई तत्व नहीं है न तो गुरु से अविक तप ही है—गुरुदेव के ज्ञान से परमतत्व का ज्ञान प्रकाशित होता है उन श्री गुरुदेव को नमस्कार है। पुनः भगवान शिव कहते हैं—कि हे पार्वती ! कल्पांत तक जब तक देह है तब तक श्री गुरुदेव का ही स्मरण करें यदि मुक्त होने की इच्छा हो तो श्री गुरुदेव को न भूलें।''

इन्हीं शब्दों के साथ पल-पल स्मरणीय परमप्रभुजी, महाप्रभुजी के चरण कमलों में साष्टांग दण्डत कोटिशः प्रणाम।

❋ ❋ ❋

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकेरिव।।

(विष्णु पुराण)

जिस प्रकार सिंह के भय से व्याकुल होकर गीदड़ प्राण रक्षार्थ इधर-उधर भागते फिरते हैं, उसी प्रकार पापी मनुष्य भी यदि विवश होकर भगवन्नाम का कीर्तन करता है तो वह तत्काल समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

चित्त

जनक कुलश्रेष्ठ (ग्वालियर)

किसी भी वस्तु को देखने के लिए आँखों का होना आवश्यक है। यदि विचार किया जाय तो वस्तु को आँखें नहीं देखती है; बल्कि उसके अन्दर जो दर्शनशक्ति है, वही बाह्य पदार्थ को देखती है। यदि यह दर्शन शक्ति नष्ट हो जाय तो आँखों व पुतलियों के होते हुए भी बाह्य पदार्थ नहीं देखा जा सकता है। यह दर्शन शक्ति भी अकेली उस बाह्य पदार्थ को तब तक नहीं देख सकती है जब तक मन का संयोग उसके साथ न हो। यदि मन या चित्त नहीं है, तो दर्शन शक्ति, आँख व पुतलियाँ किसी भी पदार्थ को नहीं देख सकती है। इसी मन या चित्त की सहायता से एक योगी बाह्य पदार्थों के अतिरिक्त अपने शरीर में स्थित ब्रह्माण्ड को भी भली भाँति देख सकता है। इसीलिए भगवान पतंजलि देव ने **"योगश्चित्त वृत्ति निरोध"** कहकर योग में चित्त का महत्व प्रगट किया है। अतः चित्त की साधना करने के पूर्व उसके विभिन्न पहलुओं पर विचार कर लेना आवश्यक है।

ब्रह्म जीव और चित्त में कोई भेद नहीं है

द्वैतं तथा नास्ति चिदात्मजीवयो–
स्तथैव भेदोऽस्ति न जीव चित्तयोः।
यथैव भेदोऽस्ति न जीव चित्तयो
तथैव भेदोऽस्ति न चित्त सर्गयोः।

योग वशिष्ठ उत्पत्ति प्रकरण ३/१०

अर्थात् ब्रह्म कारण है। यह जीव उसका कार्य है अर्थात् उसी पूर्ण ब्रह्म का एक अंश है। अतएव ब्रह्म और जीव में कोई भेद नहीं है। उसी प्रकार मन का कारण यह जीवात्मा है। यह जीव ही जब संकल्पात्मक स्वरूप धारण करता है। तब मन का सृजन होता है। इस प्रकार चित्त भी बिना जीव के क्रियाशील नहीं होता है। अतः ब्रह्मजीव और चित्त में कोई भेद नहीं है।

चित्त की अवस्था में–

चित्त की तीन अवस्थाएँ होती हैं (१) जाग्रतावस्था (२) स्वप्नावस्था और (३) सुषुप्ति अवस्था।

(१) जाग्रत अवस्था–सत्त्व चित्त में सत्वगुण गौण रूप से दबा रहता है। तमोगुण सतोगुण को उसकी वृत्ति के यथार्थ रूप को दिख वाने से रोक रखता है। परन्तु रजोगुण प्रधान होकर चित्त को इन्द्रियों द्वारा बाह्य विषयों में उपरत करने में समर्थ होता है। इन्द्रिया बहिर्मुख होकर स्थूल शरीर द्वारा कार्य करने लगती हैं।

(२) स्वप्नावस्था–सतोगुण गौण रूप से दबा रहता है। तमोगुण रजोगुण को इतना दबा

लेता है कि चित्त को इन्द्रियों द्वारा बाह्य विषयों में उपरत नहीं कर सकता है, किन्तु रजोगुण की क्रिया सूक्ष्म रूप से हुआ करती है, जिससे वह चित्त को मन द्वारा स्मृति के संस्कारों में उपरत करने में समर्थ रहता है। मन इन्द्रियों के अन्तर्मुख होने से सूक्ष्म शरीर में स्वप्न का कार्य करता है।

(३) सुषुप्ति अवस्था--सत्वगुण गौण रूप से दबा रहता है। तमोगुण रजोगुण की स्वप्नावस्था वाली क्रियाओं को भी रोककर प्रधान रूप से चित्त पर फैल जाता है। इसलिए किसी विषय का किसी भी प्रकार का ज्ञान नहीं रहता है, किन्तु रजोगुण का नितान्त अभाव नहीं होता है। वह कुछ अंश में बना ही रहता है, जिसके कारण किसी भी विषय के ज्ञान के न होने की प्रतीति होती रहती है। सूक्ष्म शरीर में कार्य बन्द होकर 'कारण शरीर' में निद्रा वृत्ति बनी रहती है।

काला चित्त की भूमियाँ

(१) मूढ़ भूमि--

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमत्तदो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते बिवृद्धे कुरुनन्दन।।

चित्त की इस मूढ़ भूमि में तमोगुण प्रधान रहता है। रजोगुण और सतोगुण गौण रूप से बने रहते हैं। इस भूमि में व्यक्ति निद्रा, मोह भय, आलस्य, दीनता, भ्रम आदि से ग्रसित रहता है। ऐसा व्यक्ति अज्ञानी, अधर्मी और अनीश्वरवादी होता है। काम, क्रोध, मोह आदि इसका स्वभाव होता है।

(२) क्षिप्त भूमि--

लोभः प्रवृत्तिरारम्भ कर्मणामशयः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते बिवृद्धे भरतर्षभः।।

इस भूमि में तमोगुण और सतोगुण गौण रूप से रहते हैं। रजोगुण की प्रधानता होने से व्यक्ति के चित्त में चंचलता, चिन्ता, शोक तथा सांसारिक काम धन्धों में अधिक रुचि रहती है। इस प्रकार का व्यक्ति कभी अधर्म करता है तो कभी धर्म करता है। कभी संसार में राग रखता है तो कभी विरक्त बनने की कल्पना करता है।

(३) विक्षिप्त भूमि--

इस भूमि में सतोगुण की प्रधानता रहती है। रजोगुण और तमोगुण गौण रहते हैं। सतोगुण की प्रधानता से साधक सुख, प्रसन्नता, दान, धर्म, वैराग्य तथा ईश्वर के प्रति विशेष श्रद्धावान रहता है।

(४) एकाग्रता भूमि--

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा कदा विधाद्विवृद्ध सत्वमित्युत।।

इस भूमि में तमोगुण गौण रूप से दबा रहता है। सतोगुण रजोगुण को दबाकर प्रधानरूप

से अपना प्रकाश करता है जिससे चित्त वस्तु के तदाकार होकर उसका यथार्थ रूप दिखाने में समर्थ होता है। स्थूल शरीर में कार्य बन्द हो जाता है और सूक्ष्म शरीर में एकाग्रवृत्ति रहती है। यह योग की सम्प्रज्ञात समाधि है।

(५) निरुद्ध भूमि–

सत्वचित्त में बाहर से तीनों गुणों का परिणाम होना बन्द हो जाता है। तीनों गुणों का नितान्त अभाव होने से चित्त अपने वास्तविक स्वरूप में अपस्थित हो जाता है। यह असम्प्रज्ञात समाधि की स्वरूप स्थिति है। चित्त में केवल निरोध परिणाम अर्थात् निरोध के संस्कार शेष रहते हैं, जिनके दुर्बल होने पर योगी को पुनः व्युत्थान दशा में आना पड़ता है।

चित्त का परिणाम–

सारी सृष्टि सत्, रज और तम इन तीनों गुणों का ही परिणाम है। एक धर्म या रूप को छोड़कर दूसरे धर्म या रूप को धारण करने को परिणाम कहते हैं।

(१) धर्म परिणाम–

किसी वस्तु के एक धर्म का दबना और दूसरे धर्म का प्रगट होना उस वस्तु का धर्म परिणाम कहलाता है। जैसे गीली मिट्टी का गोला एक धर्म है और कुम्भकार द्वारा उस मिट्टी के गोले का बर्तन के रूप में परिवर्तित होने को धर्म परिणाम कहते हैं।

जब एक साधक का चित्त विक्षिप्तावस्था से ऊपर उठकर एकाग्रता की ओर अग्रसर होता है तो यह उसके चित्त का धर्म परिणाम है।

(२) लक्षण परिणाम–

मिट्टी के गोले का बर्तन के रूप में परिवर्तित होना ही उसका लक्षण परिणाम है, क्योंकि उस बर्तन का आकार मिट्टी के गोले में छिपा हुआ था और अब वह बर्तन के रूप में प्रगट हो गया। यही उसका लक्षण परिणाम है।

चित्त में जो संस्कार वर्तमान में थे वे भूतकाल में चले जाते हैं और जो संस्कार अनागत रूप में थे वे वर्तमान में आ जाते हैं। अर्थात साधक के चित्त की विक्षिप्तावस्था के परिणाम भूत में चले गए और एकाग्रता के परिणाम वर्तमान में आ जाने को ही लक्षण परिणाम कहते हैं।

(३) अवस्था परिणाम–

धर्म परिणाम और लक्षण परिणाम की अपेक्षा अवस्था परिणाम अति सूक्ष्म है। कोई भी वस्तु ज्यों ज्यों पुरानी होती जाती है त्यों त्यों वह जीर्ण होती चली जाती है। यहाँ तक कि एक समक्ष ऐसा आता है कि उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। यह क्षीण होने की अवस्था प्रतिक्षण घटित होती रहती है। इस कारण इसको अवस्था परिणाम कहते हैं। क्योंकि यह अवस्था दीर्घ काल तक चलती रहती है।

इसी प्रकार साधक के चित्त की विक्षिप्तावस्था प्रति सोपान पर क्षीण होती चली जाती है और एक समय ऐसा आता है कि उसके चित्त की विक्षिप्तावस्था पूर्णतः समाप्त होकर पूर्ण रूपेण एकाग्रता की ओर अग्रसर हो जाती है।

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्म लक्षणावस्था परिणामर व्याख्याता। 3/3

प्रकृति की प्रत्येक वस्तु, पदार्थ एवं घटना में उपरोक्त तीनों परिणाम घटित होते रहते हैं।

इसी प्रकार साधक के चित्त में भी उपरोक्त तीनों परिणाम घटित होते रहते हैं। चित्त धर्मी है और एकाग्रता के संस्कार उसके धर्म हैं। वृत्तियों के रुकने पर संस्कार धर्मी चित्त में बने रहते हैं। एक संस्कार रूपी धर्म का दबना और दूसरे का प्रगट होना चित्त रूपी धर्म का धर्म परिणाम है।

जब चित्त विक्षिप्तता की भूमि को पार करके एकाग्रता की ओर अग्रसर होने लगता है तब चित्त के विक्षिप्तता के धर्म दबते जाते हैं और एकाग्रता के लक्षण प्रगट होने लगते हैं।

इसी प्रकार एकाग्रता के संस्कार अभिभूत होते हैं और निरोध के संस्कारों का प्रादुर्भाव होता है जो एकाग्रता के संस्कार पहले वर्तमान रूप में थे वे भूत में चले गए। तथा निरोध के संस्कार जो अनागत में थे वे वर्तमान रूप में आ गए।

साधक की जैसे–जैसे एकाग्रता प्रबल होती है तब वह सर्वप्रथम स्थूल महाभूतों का साक्षात्कार करता है। यही उसके चित्त की सवितर्क समाधि का लक्षण परिणाम है। एकाग्रता से स्थूल भूतों का साक्षात्कार होना उसके चित्त का धर्म परिणाम है।

साधक की यह अवस्था कुछ काल तक यथावत बनी रहती है। यद्यपि उसमें शनैः शनैः परिवर्तन होता रहता है मंद गति से परिवर्तन होने से साधक सहसा उसका अनुभव नहीं कर पाता है। यही उसके चित्त का अवस्था परिणाम है। चित्त के इस अवस्था परिणाम के एक लम्बे समय तक चलते रहने से कभी–कभी साधक अपना धैर्य छोड़ देता है; क्योंकि उसे अपने चित्त में होने वाले मन्द परिवर्तन का आभास नहीं हो पाता है।

इसी प्रकार जब साधक की साधना कुछ और उच्च हो जाती है, तब वह स्थूल भूतों के स्थान पर सूक्ष्म भूतों (पंच तन्मात्राओं) का अनुभव करने लगता है तथा साधक का चित्त ध्येयाकार होकर अपने ध्येय का साक्षात्कार करने लगता है। तब यह विचारानुगत समाधि कहलाती है। स्थूल भूतों के स्थान पर सूक्ष्म भूतों का साक्षात्कार करना धर्म परिणाम है। एक चित्त में सूक्ष्म भूतों के लक्षण गोचर होने लगते हैं। यही लक्षण परिणाम है।

सूक्ष्म भूतों का एक लम्बे समय तक टिके रहना ही अवस्था परिणाम है। परिणामतः साधक अपनी साधना में क्रमशः अग्रसर होते–होते निरोध परिणाम तक पहुँच जाता है। अर्थात् मन की चंचलता का दबना और निरोध संस्कार का प्रगट होना ही निरोध परिणाम कहलाता है।

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयो चित्तस्य समाधि परिणाम।3/11

जब चित्त की समस्त वृत्तियाँ, जो अनेक विषयों की ओर भागती रहती है, नष्ट हो जाती है और एकाग्रता रूप धर्म उदय होता है तब चित्त की इस अवस्था को समाधि परिणाम कहते हैं तथा असम्प्रज्ञात समाधि में निरोध संस्कारों के उदय से व्युत्थान के संस्कारों का भी अन्त हो जाता है।

* * *

क्रिया योग का प्रथम अंग

''तप''

रामेश्वर खण्डेलवाल

साधन पाद के प्रथम सूत्र के इस क्रिया योग में सबसे पहले 'तप' को ग्रहण किया है। 'तप' (तपस्या) का नाम सुनते ही साधक के सामने कुछ ऐसी तस्वीरें आती हैं जैसे तपस्वी लोग वन में तपस्या करते हैं। एक पैर पर खड़े होकर साधना करते हैं या पंचाग्नि अपने चारों ओर जला कर उसके बीच में बैठकर तप करते हैं। ऐसी कई तरह की कठिन साधना भी तप का ही एक अंग होती है। लेकिन सासारिक लोगों को कौन–सा तप करना है व इसके करने से क्या लाभ मिलता है। इन विषयों पर प्रकाश डालते हैं और ऐसा सरल साधन आपके सामने प्रस्तुत है जिस पर अमल करते हुए सांसारिक लोग, गृहस्थ आश्रम में रहते हुए से साधना कर सकते हैं।

महर्षि व्यास ने अपने भाष्य में तप के सम्बन्ध में कहा है–**''नातपस्विनो योगः सिद्ध्यति''** जो साधक तपस्वी नहीं है उस साधक का योग सिद्ध नहीं होता है। क्योंकि अनादि काल से पुण्य–अपुण्य, कर्मों, अविद्या–अस्मिता–राग–द्वेष आदि क्लेशों की वासनाओं से पूर्ण नाना प्रकार की विषयों को उपस्थित करनेवाली रजस्तमोमयी जो चित्त की अशुद्धि है ?–मलिनता है, वह बिना तप के नष्ट नहीं हो सकती, वह बिना तप के छिन्न–भिन्न नहीं हो सकती, इसलिए साधक को तपस्वी बनना जरूरी है। जिससे साधक का चित्त सदा प्रसन्न रहता है, निर्मल शुद्ध व पवित्र बना रहता है।

जो तपस्वी नहीं है, परिश्रमी नहीं है उसका योग कभी सिद्ध नहीं हो सकता, उसकी साधना सफल नहीं हो सकती।

'तप' क्या है– हमारे परम पूज्य गुरुदेव समय–समय पर अपनी वाणी से, अपनी लेखनी से साधकों को बताया करते हैं कि 'तपो द्वन्द्व सहनम्' द्वन्द्वों को सहन करना सबसे बड़ा तप है सांसारिक व्यक्तियों के लिए ग्रहस्थ आश्रम में रहते हुए पारिवारिक, सामाजिक या आर्थिक समस्याओं को बिना किसी तनाव के हंसते–हंसते सहन करना या मुकाबला करना सबसे बड़ा तप है। ग्रहस्थियों के लिए अनेक प्रकार की कठिनाईयां उनके जीवन में आती रहती हैं। भूख–प्यास, गरीबी–अमीरी, सर्दी–गर्मी, मान–अपमान, आदर–अनादर ऐसी कई तरह की अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती रहती। ऐसी परिस्थिति में अज्ञानी लोग एक दूसरे के ऊपर आरोप लगाते रहते हैं या अपने आप को कोसते रहते हैं। लेकिन जिसको इस विषय में थोड़ा ज्ञान है तो वह व्यक्ति इस परिस्थिति को तप बना देगा। जब ऐसी परिस्थिति आए तो साधक को केवल ये सोचना है, ये मानना है कि ये सब हमारे पूर्व जन्म के बुरे कर्मों का फल, भोग के रूप में हमारे सामने आ रहा है। हमारे बुरे कर्मों का संस्कार कह रहा है। क्योंकि कर्म

संस्कार बिना भोगे नहीं कटता तो ऐसे में हमारा रोना बेकार है अगर इस भोग को हँसते-हँसते भोगे या प्रभु का प्रसाद मान कर ग्रहण करें तो इस क्रिया से हमारा तप सिद्ध हो जाएगा। प्रतिकूल परिस्थिति तो हमारे सामने आयेगी किसी को असाध्य बीमारी, किसी को धन का संकट या परिवार में कलह, किसी ने हमारा अपमान कर दिया, रोजी-रोटी का संकट आदि अनेक प्रकार की दुःखद स्थिति ग्रहस्थ व्यक्ति के सामने आती रहती है। अब इस परिस्थिति को हंसते हुए भोगो या रोकर भोगो, भोगना अवश्य पड़ेगा। अगर हमने शान्त चित्त से प्रभु का प्रसाद मान इसका भोग किया तो ये परिस्थिति 'तप' से होने वाले सारे लाभ हम को दे जाएगी। हमारा तप सिद्ध हो जाएगा। इसको इस तरह भी सोच लेना कि वो परमपिता हमारी परीक्षा ले रहा और इसमें हमको उत्तीर्ण होना है।

श्रीमद्भगवत गीता में अध्याय सत्रहवां के श्लोक १४.१५.१६ में भगवान श्रीकृष्ण ने तीन प्रकार के तप बताये हैं।

(१) शारीरिक तप (२) वाणी का तप (३) मन का तप

देवता, ब्राह्मण, गुरुजन व महापुरुषों का पूजन करना, आदर सत्कार करना, शरीर की शुद्धि रखना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, हिंसा न करना ये शरीर सम्बन्धी तप हैं। हर प्राणी पर दया करुणा का भाव रखना, किसी को किसी प्रकार की चोट न पहुँचाना, कभी गलत खान-पान न करना, अपने से छोटो पर प्यार व बड़ों का आदर करना शारीरिक तप है।

उद्वेग न करने वाला, सत्य, प्रिय, हितकारक भाषण तथा स्वाध्याय और अभ्यास करना यह वाणी का तप है। किसको अपमान जनक शब्द न बोलना, जो शब्द आप दूसरों से नहीं सुन सकते ऐसे शब्द दूसरों के लिए भी प्रयोग न करना। मीठे-सरल व शान्त वचनों को बोलना। दूसरों की निन्दा न करना, दूसरे के दोषों को न कहना बेकार की बातों का न करना ये वाणी का तप कहलाता है।

मन की प्रसन्नता, सोम्य भाव, मननशीलता, मन का निग्रह भावों की शुद्धि इस तरह यह मन सम्बन्धी तप कहा गया है।

मन को हमेशा प्रसन्न चित्त बनाये रखना, कभी अशान्त नहीं होने देना। मन में कभी दूसरे के प्रति बुरे विचारों का संकल्प न करना, बुरा न सोचना क्योंकि बूरे संकल्पों से हमारे कर्म संस्कार भी दुःखद ही बनते हैं। इसलिए कभी किसी के प्रति बैर-भाव न रखना। अच्छा सोचना भला सोचना, अनुकूलता-प्रतिकूलता, संयोग-वियोग, राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को लेकर मन में हलचल होना ही वास्तव में मन का तप है।

तैतिरीय आरण्य के शब्दों में

"ऋतंतप"-जो ऋत है, जो यथार्थ बोलता है, सत्य बोलता है, प्राकृतिक नियमों का पालन करता है। प्राकृतिक के अनुकूल आहार विहार करता है छल कपट करने से बचता है।

ये तप है, ये तपस्या है।

'श्रुतं तप'—जो वेदादि सत्य शास्त्रों को सुनता और अपने हृदय में उतारता है ये भी तप है।

'शान्तं तपं'—स्वभाव से जो अपने आपको शान्त बनाये रखता है, सौम्य बनाये रखता है ये भी तप की श्रेणी में आता है।

'दमस्तप'—अपनी इन्द्रियों का दमन करना उनको विषय वासनाओं से बचाना भी तप है।

'शमस्तप'—अपने मन को सदा शमन करना, उसको बुराईयों से बचाना, बुरा सोचना, काम क्रोध आदि विकारों से बचाना और शान्त रखना भी एक तप है।

ये तप जब किए जाते हैं तो यह हमारे भीतर बाहर की अशुद्धि को अलग कर हमारे शरीर मन को निखार कर शरीर को स्वस्थ, सबल, सशक्त बनाता है। मन हमारे अनुकूल बनता है। बिना तप के जन्म—जन्मान्तरों की वासनाओं का क्षय करने के लिए हमको ये तप अवश्य करने हैं। ये तप हमको योग मार्ग में लाभ पहुँचायेंगे। साथ ही गुरुदेव भगवान का आशीर्वाद व उनकी शक्ति हमको पूरा सहयोग प्रदान करेगी।

* * *

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।।

(गीता २/६०)

हे अर्जुन ! आसक्ति का नाश न होने के कारण ये प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुष के मन को भी बलात् हर लेती है।

चिन्मय शरीर से प्रभु जी द्वारा अमोघ वरदान

वेदव्रत द्विवेदी

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य श्री सद्गुरुदेव भगवान योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की अमोघ कृपा से अपने दीन–हीन बालक पर किस प्रकार अहैतुकी कृपा करते हैं, यह तो वही जान सकता है जो श्री सद्गुरु देव भगवान के चरणों का अनन्य भक्त हो जाया करता है। क्योंकि श्री सद्गुरुदेव सत्ता ईश्वरी सत्ता का ही परिचायक है।

जिन जानहुँ तेहि देहि जनाइ।
जानइ ते तुम्हहिं होइ जाइ।।

—श्री राम चरित मानस

कवि कुल चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित यह चौपाई का विषद वर्णन कर पाना एवं प्रभु के चरणों का गुणगान एवं उनकी महिमा का थाह पाना मुझ जैसे पतित कुबुद्धि मानव, पर उसी प्रकार समझना चाहिए जैसे पिपीलिका (चींटी) अगाध सागर को तैर कर पार करने का निरर्थक प्रयास ही कहा जा सकता है।

साधक के जीवन में जब तक वैराग्य का अरुणोदय नहीं होता तब तक अविद्याजन्य क्लेशों की रात्रि का अन्त नहीं हो सकता, क्योंकि प्रतिक्षण काम वासनाओं का सीधा प्रहार मनुष्य के लौकिक एवं पारलौकिक दोनों सुखों को इसी प्रकार गर्त में गिरा देता है। जैसे अन्धे आदमी को अन्धा ले चलने का प्रयास कर रहा हो, जिसका प्रमुख कारण है— विषय–वासनाओं एवं विषय भोगों का क्षय न होना—

लेखक श्री सद्गुरु देव भगवान के चरणों का दास अत्यन्त अल्पबुद्धि एवं भौतिक वासनाओं का उदाहरण है। आराध्य देव के चरणों में जाने का सौभाग्य बार–बार प्राप्त होता रहा, परन्तु माया की दुस्तर बेड़ियों से जकड़ा हुआ एवं अपनी अल्प बुद्धि मलीनता से प्रभु जी के बारे में एक खाना पूर्ति की दृष्टि से देखा करता था।

लेखक श्री वेदव्रत द्विवेदी जिसका नामकरण श्री सद्गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारविन्द से किया था। तथा अपने अभय चरणों में स्थान देकर कृतार्थ किया, तथा अपने कर–कमलों में लेकर मुझ–जैसे नीच, अधम का नामकरण कर एक दिव्य आभा प्रज्वलित करने की महती कृपा की। जो कि (गुरु) प्रभु के ऋण से मुक्त हो पाना हमारे लिये दुष्कर ही नहीं अपितु असम्भव है।

सुविज्ञ पाठकों एवं मूर्धन्य विद्वानों तथा श्री सद्गुरुदेव जी के अनन्य भक्तों से यही प्रार्थना करते हैं। लेख की त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए क्षमा करने की महती कृपा करेंगे।

प्रसंग—घटना २२ जून, २००४ की है, अचानक मैं बिस्तर पर लेटे हुये अनायास ही प्रभु के चरणों में मनन एवं चिन्तन करने लगा तथा अपने पाप कर्मों को प्रभु के चरणों में न्यौछावर कर रात्रि के ९ बजे से लेकर रात्रि के अन्तिम प्रहर ३ बजे तक मेरे नेत्रों से अविरल अश्रु धारा बहती रही। पूरे ६ घण्टे तक अश्रु धारा रुकना ही भूल गयी थी। आराध्य देव गुरु चरणों में बार–बार एक वाक्य मानस पटल पर अंकित होता जा रहा था कि प्रभु जी महाप्रभु जी आप सिद्धेश्वरों के सरताज हैं। आप हिमालय पहाड़ पर समाधिस्त हैं। आप का जहाँ बसेरा है वह हिमालय

पहाड़ भी मेरे पापों से छोटा है। मैं इस दुनिया का सबसे बड़ा पापी हूँ। आप तो पापियों तथा पतितों को भी गले लगाते हैं इस तरह से अनवरत आँसू एवं हृदय के विदारकपूर्ण आसुओं से मन बोझिल और असहाय हो गया था। तब तक हमारे और आप के प्राणी मात्र के भाग्य विधाता आनन्द कन्द श्री गुरुदेव जी हमारे सामने चिन्मय शरीर में विद्यमान हो गये। सहसा मेरी जुबान से आवाज बन्द हो गयी, परन्तु मैंने जो प्रार्थना पूर्ववत् प्रभु के चरणों में की थी, वह मेरे हृदय में गूँज रही थी।

अचानक आँख खोलने पर मेरे श्री सद्गुरुदेव भगवान क्रोध के आवेश में खड़े थे। तथा मैं अभागा, श्री प्रभु के चरणों में साष्टांग प्रणाम नहीं कर सका। सिर्फ हाथ जोड़कर बिस्तर पर ही लेटा रहा तत्पश्चात् श्री प्रभु जी एक मधुर मुस्कान से देखते हुए कहने लगे—"अरे लल्ला क्यों रो रहे हो ?"

मैं प्रभु जी से विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगा "प्रभु जी, आप अन्तर्यामी हैं, सब कुछ जानते हैं।" मेरे इतना कहने पर भी, श्री आराध्य देव जी मुझे दुबारा मुस्कराते हुये देखने लगे।

मैंने प्रभु जी से वही बात दोहराई, जो पहले अश्रुपात के समय कही थी। मैंने प्रभु जी से कहा—प्रभु जी आपने नमक रोटी से आबाद कर दिया—फिर अचानक आँसू गिरने लगे, और आवाज निकलना बन्द हो गया, प्रभु जी मुस्कराते हुये बोले—

"बोल लल्ला, क्या चाहिए ?"

मैंने प्रभु जी से कहा मेरा मन एकाग्र हो जाय। इतना सुनते ही प्रभु जी ने कहा—

"तथास्तु"। लल्ला ऐसा ही होगा"। इतना कहते हुये आनन्दकन्द, करुणानिधान दयासागर बिजगथानव आराध्य श्री सद्गुरुदेव जी मेरे आँखों के सामने से अर्न्तध्यान हो चुके थे। सुबह लगभग साढ़े चार बजे का समय रहा होगा—मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी ने आकर कहा तेरे लड़के का प्राणन्त हो गया, वह अमुक शहर में है। बालक के पिता को वज्रघात पीड़ा होने लगती है।

परन्तु किसी दूसरे ही क्षण आकर के कोई दूसरा व्यक्ति कह दे, नहीं यह सब बातें झूठी हैं। उस समय परिवार एवं पिता को खुशी का अनुमान लग सकता है। ऐसा मुझे लगा।

यं यं चिन्तयते कामं तन्माप्नोति निश्चितम् (गुरुगीता स्कन्द पुराण)

भावार्थ यह है कि श्री सद्गुरुदेव भगवान की कृपा से जो, जो कार्य विचारा जाता है। सो सो निश्चय प्राप्त होता है।

श्री सद्गुरु देव भगवान के चरणों में मेरा कोटिशः प्रणाम स्वीकार है। उन्हीं प्रभु के चरणों की कृपा से अशुद्ध एवं त्रुटिपूर्ण अपनी अज्ञानता वश लेखनी से लेख लिखने का अद्भुत दुःसाहस पूर्ण कार्य करना मेरा एक छोटा—सा प्रयास कहा जा सकता है।

श्री ज्ञानी बाबा जी की भजनावली बिल्कुल सत्य एवं सारगर्भित दृष्टिगत जान पड़ती है। मेरे चन्द्रमोहन करतार तुम्हारी महिमा अपरम्पार भेद तेरा पाया ना।

जो कुछ सफलता प्राप्त होती है। यह सब जीव के शुभ—संस्कार एवं विशेषतः सद्गुरु का फल देता है।

❊ ❊ ❊

सूर्य किरण चिकित्सा

'शरीरं व्याधिमन्दिरम्'—के अनुसार इस मानव–शरीर में रोग होना स्वाभाविक है। सम्भवतः इसे ही देखकर ऋषियों ने लोककल्याणार्थ व्याधिचिकित्सा के लिये उपवेदों में आयुर्वेद को भी स्थान दिया। आयुर्वेद में कई रोगों के निवारणार्थ सूर्यकिरण सेवन और सूर्यार्चन का विधान है। मानव सूर्यकिरणों द्वारा आरोग्य प्राप्त कर सकता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि आयुर्वेद में जहाँ रोगनाशहेतु औषधियों की बात कही गयी है, वहीं प्रत्येक रोग के रोगाधिकारी देवताओं की उपासना का भी निर्देश है। इसके लिये उसमें यन्त्र, मन्त्र और स्तोत्र भी वर्णित हैं। शिव–प्रणीत शाबरमन्त्रों में भी अनेक रोगनाशार्थ मन्त्र कहे गये हैं। जहाँ तक सूर्य–किरण–चिकित्सा की बात है, यह निःसंदेह हमारे देश की प्राचीन पद्धति है। वेदों में भी इस पर प्रकाश डाला गया है। **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**—अर्थात् सूर्य ही स्थावर जंगम की आत्मा हैं। अथर्ववेद के एक सूक्त में भी कहा है कि तेरा हृदयरोग और पाण्डु (पीलिया, पीलक) रोग सूर्य किरणों के साथ सम्बन्ध करने से चला जायेगा। जहाँ तक आयुर्वेद में सूर्योपासना की बात है उसमें भी चर्म और कफ रोगों के निवारणार्थ इस पर बल दिया गया है। यदि आप विचार करें तो पायेंगे कि सूर्य किरणें इस पृथ्वी पर कामधेनु स्वरूपा और कल्पवृक्षतुल्य हैं सूर्य किरण–चिकित्सा–पद्धति प्राचीन और भारतीय है। पर इसके गुणों को पश्चिमवालों ने भी अपनाया। वे विटामिन 'डी' के प्राप्त्यार्थ इसे ही एकमात्र साधन बताते हैं यही नहीं, अमरीका के बहुत–से चिकित्सकों ने इसके सफल प्रयोग भी किये हैं।

पर यह भारत का अभाग है कि इसने आविष्कार तो बहुत किये; परन्तु इसकी बौद्धिक दासता ने सभी प्रयोग दबा दिये। मौर्य–गुप्त राजाओं के समय से यूनानी चिकित्सा आने लगी। अंग्रेजों के साथ एलोपैथी आयी। आयुर्वेद और उसके प्रयोग दबते ही रहे। इस आधार पर चर्चित चिकित्सा को वर्तमान स्वरूप में सर पलिझन होन लाये। उन्होंने अपनी 'आसमानी रंग और सूर्य–प्रकाश' नामक पुस्तक में आसमानी रंगों और सूर्य–किरणों से कई रोग समाप्त करने का वर्णन किया है। इसके बाद डॉ० येनस्कॉटने अपनी (Blue and red lights) 'नीला और लाल प्रकाश' तथा डॉ० एडविन बेबिटने **'प्रकाश और रंगों के नियम'** नामक पुस्तक में इस पद्धति पर प्रकाश डाला है और डॉ० रौबर्ट बोहलेन्ड साहब द्वारा अनेक दुःसाध्य रोगों पर इसका सफल प्रयोग हुआ है।

अपने देश में भी स्वनामधन्य स्व० स्वा० सरस्वतीनन्द ने मराठी में अपनी पुस्तक **'वर्ण-जल-चिकित्सा'** में इसकी चर्चा चलायी। कुछ वर्ष पूर्व दिवंगत श्रीयुत गोविन्द बापूजी टोंगूने इस दिशा में सर्वाधिक सफल प्रयोग कर सहस्त्राधिकजनों को लाभान्वित किया।

इस पद्धति के उपचार में नीले रंग के प्रयोग से बुखार, पुरानी पेचिश, अतिसार, संग्रहणी, खांसी, कास–श्वास, शिरःशूल, शिरोरोग, गर्मी, प्रमेह, मूत्ररोग, विस्फोटक, श्लीपद इत्यादि; लाल रंग के प्रयोग से समस्त वात–व्याधि, पीले रंग से समस्त उदररोग, समस्त हृद्रोग आदि; हरे रंग से समस्त त्वचारोग और किमधिकम् प्रायः सभी रोग नष्ट हो सकते हैं।

इस पद्धति का मुख्य तात्पर्य उस पद्धति से है जिसमें लक्षाधिक औषधियों का प्रयोग न कर ओषधि–सेवन और संयम सब में भानु–रश्मि की प्रधानता हो और जिसमें सूर्य–किरणों से निर्मित जल, तैल, दिव्य शर्करा और गोलियों का प्रयोग हो, धूप स्नान का प्रयोग हो।

जल-विधि–इस पद्धति के अनुसार उपचार करने के लिये रोगानुसार विभिन्न रंगों की बोतलें लेनी चाहिये, जो सर्वथा स्वच्छ, पारदर्शी और दाग या धब्बे से रहित हों। बोतल के रंग का ही उसका ढक्कन या कार्क (डॉट) हो। फिर कूप, तालाब, नदी, झरना या चापाकल (हैण्डपाइप) का सर्वथा स्वच्छ जल चार परत मोटे वस्त्र से छान लें। तब उसे किसी बोतल में इतना भरें कि केवल चार अंगुल ऊपर वह खाली रह जाय। फिर बोतल को ढक्कन से भली प्रकार बंद कर उसे धूप में खुली हवा और स्वच्छ स्थान में एक लकडी की पटिया अथवा तिपाई या चौकी पर रखें। उस स्थान पर पूर्वाह्न दस बजे से अपराह्न पाँच बजे तक सूर्य–किरणें अबाधगति से आती हों और छाया न पड़ सके। पाँच बजते ही तत्काल बोतल वहाँ से हटाकर बोतल के रंग के ही पतंगी कागज में लपेट कर आलमारी में रख दें। धूप में रखी बोतलों में धूप से उष्णता पाकर जब रिक्त भाग में वाष्पबिन्दु एकत्र हो जाय तो उस जल को निर्मित मान लेना चाहिये। इस जल को रोग और मात्रा के अनुसार पी भी सकते हैं और इसकी पट्टी द्वारा या इससे धोकर बाह्य उपचार भी कर सकते हैं। किन्तु उपर्युक्त निर्देशका पालन अवश्य हो। त्रुटि हानिप्रद हो सकती है। यदि भूल से बोतल सूर्यास्त तक वहाँ रह जाय अर्थात् उस पर चन्द्रमा आदि की रोशनी पड़ जाय तो जल तत्काल फेंक देना चाहिये और बोतल को धो देना चाहिये। वैसे जल, शर्करा गोलियाँ या तैल सभी चैत्र से ज्येष्ठ मास तक तैयार करें, क्योंकि तब यथेष्ट किरणें मिलती हैं। जब कई रंग की बोतलें धूप में रखनी हों तो उन्हें सटाकर नहीं रखना चाहिये। एक बोतल में केवल एक बार जलादि तैयार कर उसमें तीन दिन तक नहीं रखें, वरन् दूसरी श्वेत वर्ण की बोतल में उलट दें। यदि कई बोतलें आलमारी में रखी हों तो उन पर उन्हीं रंगों का कागज लपेट दें। एक की छाया दूसरे पर न पड़ सके। एक दिन का तैयार जल केवल तीन दिनों तक प्रयोग करें, फिर दूसरा बना लें।

तैल–शिरो रोग में काँच की नीली बोतल में शुद्ध तिल, नारियल या बादाम का तेल और त्वचा–रोगों में हरे रंग की बोतल में केवल तिल का तेल पूर्वोक्त रीति से भरकर कार्क या ढक्कन में रूई लपेटकर भलीभाँति बंद कर दे। उसे भी लकड़ी पर ही ६० दिनों तक रखे। प्रतिदिन रूई बदलता रहे। तैयार हो जाने पर इत्र मिला सकते हैं; पर रंग नहीं।

दिव्य शर्करा–अभीष्ट रंग की बोतलों में दूध की चीनी या पिसी मिश्री भरकर पूर्वोक्त विधान से धूप में रखे। शर्करा उसी बोतल में रहने दे। जिस समय धूप न हो और धूपित जल उपलब्ध न हो, उस समय एक बड़ी श्वेत बोतल में आधा सेर जल में तीन माशा शर्करा घोल दे तो वह जल भी पूर्वोक्त धूपित जल के समान हो जायगा। सूखी शर्करा सेवन न करें।

गोलियाँ–होमियोपैथी की दूध से बनी सादी गोलियाँ (Suger of Milk) आवश्यकतानुरूप कई बोतलों में पंद्रह दिन तक रखकर तैयार कर ले। वर्षा के समय पानी या शर्करा के स्थान पर इसकी एक या दो गोलियाँ मुख में रखकर पानी पी लें।

* * *

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः   ॐ श्री सदाशिव प्रभवे नमः   ॐ श्री चन्द्रमोहन गुरुवे नमः

योग भेदी है मेरा, योग में माया नहीं ।
योग साधन के बिना, कोई मुझे पाया नहीं।

'योग ही दिव्य जीवन है'

पल-पल स्मरणीय परम आराध्य योग योगेश्वर सद्गुरुदेव

अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

एवं

अखिल ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल महाराज जी तथा
आदि गुरु भगवान श्री सदाशिव जी के चरण कमलों में समर्पित

तृतीय वार्षिक योग-ध्यान प्रशिक्षण शिविर

दिनांक : २३ से २७ फरवरी, २००५ तक

स्थान : रामलीला मैदान, अनपरा कॉलोनी (सोनभद्र)

सभी आदरणीय गुरु भाई-बहिन एवं योग जिज्ञासुओं को सहर्ष सादर सूचित किया जा रहा है कि जनपद सोनभद्र के ऊर्जांचल नगरी अनपरा में "श्री सिद्धयोग प्रशिक्षण शिविर" का आयोजन किया गया है। जिसमें श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संभाई, आगरा के योगाचार्यों द्वारा योग के गूढ़ रहस्यों का सरल भाषा में रहस्योद्घाटन कर ध्यान एवं योग द्वारा साध्य-असाध्य रोगों का प्रायोगिक निराकरण निःशुल्क कराया जायेगा।

आप सभी महानुभावों विशेषकर इस परिक्षेत्र में प्रवास करने वाले योग जिज्ञासु एवं भगवत् प्रेमी आत्मीयजन से विनम्र आग्रह है कि श्री सिद्धयोग प्रशिक्षण शिविर में सम्मिलित होकर योग के अलभ्य, बोधगम्य एवं अन्तरंग विषयों का श्रवण, मनन एवं अभ्यास कर शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक लाभ उठाकर मानव जीवन सफल बनायें। योग अपनाकर, रोग दूर कर अमर योगी बनें।

कार्यक्रम

प्रातःकाल

5:00 बजे से 6:30 बजे तक सूक्ष्म आरती एवं ध्यान
6:30 बजे से 8:00 बजे तक जीवन तत्व साधन, आसन एवं योग द्वारा रोग निवारण।
8:00 बजे से 9:30 बजे तक आरती एवं गीता पाठ।
9:30 बजे से 1:00 बजे तक कीर्तन एवं प्रवचन।
तदोपरान्त भोजनावकाश।

सायंकाल

23.02.05 को 6:00 बजे श्री गुरुगीता पाठ एवं प्रवचन
3:00 बजे से 5:00 बजे तक महिला संकीर्तन।
5:00 बजे से 6:00 बजे तक ध्यान।
6:00 बजे से 8:30 बजे तक प्रवचन।
8:30 बजे से आरती।
तदोपरान्त भोजनावकाश।

• सम्पर्क हेतु दूरभाष :

अनपारा - 05446-273564, मोबाइल : 9839653626, वाराणसी : 0542-2586711, कानपुर : 0512-2513389

निवेदक : श्री सिद्ध गुफा योग साधक मण्डल, मीरजापुर, वाराणसी एवं कानपुर

अनपरा पहुँचने हेतु :- लिंक, शक्तिपुंज, मुरी एवं स्वर्ण जयन्ती ट्रेन से रेनुकूट रेलवे स्टेशन उतरकर बस द्वारा अनपरा (30 किमी)
सिंगरौली ट्रेन द्वारा अनपरा रेलवे स्टेशन (2 किमी.) या बस द्वारा अनपरा सीधे पहुँचा जा सकता है।

प्रिन्टवेल्ड, मोती कटरा, आगरा दूरभाष : 0562-2262261

ध्यान-विधि

(विवेक चूडामणि से)

लक्ष्ये ब्रह्मणि मानसं दृढतरं संस्थाप्य बाह्येन्द्रियं
स्वस्थाने विनिवेश्य निश्चलतनुश्चोपेक्ष्य देहस्थितिम्।
ब्रह्मात्मैक्यमुपेत्य तन्मयतया चाखण्डवृत्त्यानिशं
ब्रह्मानन्दरसं पिबात्मनि मुदा शून्यैः किमन्यैर्भ्रमैः।।३७९।।

चित्त अपने लक्ष्य ब्रह्म में दृढ़तापूर्वक स्थिरकर बाह्य इन्द्रियों को (उनके विषयों से हटाकर) अपने-अपने गोलकों में स्थिर करो, शरीर को निश्चल रखो और उसकी स्थिति की ओर ध्यान मत दो। इस प्रकार ब्रह्म और आत्मा की एकता करके तन्मयभाव से अखण्ड-वृत्ति से अहर्निश मन-ही-मन आनन्दपूर्वक ब्रह्मानन्दरस का पान करो और थोथी बातों से क्या लेना है ?

अनात्मचिन्तनं त्यक्त्वा कश्मलं दुःखकारणम्।
चिन्तयात्मानमानन्दरूपं यन्मुक्तिकारणम्।।३८०।।

दुःख के कारण और मोहरूप अनात्म-चिन्तन को छोड़कर आनन्दस्वरूप आत्मा का चिन्तन करो, जो साक्षात् मुक्ति का कारण है।

एष स्वयंज्योतिरशेषसाक्षी
विज्ञानकोशे विलसत्यजस्रम्।
लक्ष्यं विधायैनमसद्विलक्षण-
मखण्डवृत्त्यात्मतयानुभावय ।।३८१।।

यह जो स्वयंप्रकाश सबका साक्षी निरन्तर विज्ञानमय कोश में विराजमान है, समस्त अनित्य पदार्थों से पृथक् इस परमात्मा को ही अपना लक्ष्य बनाकर इसी का (तैलधारावत्) अखण्ड-वृत्ति से, आत्म-भाव से चिन्तन करो।

एतमच्छिन्नया वृत्त्या प्रत्ययान्तरशून्यया।
उल्लेखयन्विजानीयात्स्वस्वरूपतया स्फुटम्।।३८२।।

अन्य प्रतीतियों से रहित अखण्ड-वृत्ति से इस एक ही का चिन्तन करते हुए योगी इसी को स्पष्टतया अपना स्वरूप जाने।

अत्रात्मत्वं दृढीकुर्वन्नहमादिषु संत्यजन्।
उदासीनतया तेषु तिष्ठेद्घटपटादिवत्।।३८३।।

इस प्रकार इस परमात्मा में ही आत्मभाव को दृढ़ करता हुआ और अहंकारादि में आत्मबुद्धि छोड़ता हुआ उनकी ओर से शरीर से भिन्न घट-पट आदि वस्तुओं के समान उदासीन हो जाय।

SIDDHYOG Regd. No. L.Ag. 008

December, 2004

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सचाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री
191-उमाशंकर भारद्वाज
B-65 बालाजीपुरम् अलवतिया रोड़,
शाहगंज आगरा (उ.प्र.) 282010

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम्।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणौ जागति।।

(नारद पुराण पूर्व० ३७/३८)

हरिण, मछली और सज्जन क्रमशः तृण, जल और संतोष पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं (किसी को दुःख नहीं देते) परन्तु व्याध, मछुए और दुष्ट लोग बिना कारण इनसे वैर करते हैं।

प्रकाशक एवं मुद्रक :- विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बल्केश्वरी, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सचाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक—आचार्य ब्र.(डॉ.) रामलाल शर्मा